भारत के नैतिक विचारकों एवं दार्शनिकों के योगदान

भारतीय दर्शन के नीतिशास्त्रीय तत्व (Ethical Elements of Indian Philosophy) :

1. राधाकृष्णन् के अनुसार दर्शन का मुख्य लक्ष्य निर्माणात्मक एवं सृजनात्मक है। सच्चा दर्शन मानव-जाति को असत्य से सत्य की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, असंतोष से संतोष की ओर ले जाता है। इस रूप में यह जीवन के नैतिक मार्गदर्शन में उपयोगी है।
2. प्रत्येक व्यक्ति का एक जीवन-दर्शन होता है जिसके आधार पर वह जीवन जीता है। जिसके जीवन-दर्शन में स्पष्टता, वैचारिक संगति, वास्तविकता एवं मूल्यात्मक पक्ष अधिक होता है, उसका जीवन व्यवस्थित एवं खुशहाल होता है।
3. **कर्म नियम** अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को उसके अच्छे कर्मो का अच्छा फल और बुरे कर्मो का बुरा फल अवश्य मिलता है। इस प्रकार कर्म नियम की अवधारणा जीवन में सद्कर्मो को प्रोत्साहित और दुष्कर्मो को हतोत्साहित करने में सहायक है।
4. उपनिषदों में पुरूषार्थ की अवधारणा है जिसमें जीवन के आरम्भ में '**धर्म**' अर्थात् मूल्य, सदाचार एवं नैतिकता के बीजारोपण की बात की गई है। यहाँ 'धर्म' के आधार पर ही आर्थिक एवं पारिवारिक जीवन के संचालन का समर्थन किया गया है।
5. **सत्यमेव जयते** अर्थात् अन्ततः सत्य की ही विजय होगी। (मुण्डकोपनिषद)
6. **वसुधैव कुटुम्बकम्** अर्थात् सम्पूर्ण विश्व एक परिवार के समान है। इस पृथ्वी पर रहने वाले सभी मानव एक परिवार की तरह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों यथा सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्र में भागीदार हैं।
7. **सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः** अर्थात् ''सभी जीव सुखी रहें, सभी जीव निरोगी रहें'' ऐसी मंगल कामना है।
8. प्रत्येक भारतीय दर्शन एक नीति संहिता का प्रतिपादन करता है, जिसके अनुसार आचरण करते हुए जीवन के चरम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त किया जा सकता है। इस क्रम में मूल्यपूर्ण आचरण की बात की गई है। जैसे:- जैन दर्शन में त्रिरत्न, बौद्ध दर्शन में अष्टांगिक मार्ग, योग दर्शन में अष्टांग योग तथा अद्वैत वेदांत में साधन चतुष्टय की बात की गयी है।
9. गीता में '**लोक संग्रह**' की अवधारणा आई है जहाँ व्यावहारिक नैतिकता के स्तर पर 'लोक कल्याण' को जीवन का लक्ष्य माना गया है।
10. भारतीय दार्शनिक परम्परा में '**तेन त्यक्तेन भुंजीथाः**' (ईशावास्योपनिषद) अर्थात् त्यागपूर्वक भोग की अवधारणा का समर्थन किया गया है। इस प्रकार यहाँ आत्म संयम, त्यागपूर्ण भाव एवं आचरण, प्रकृति प्रेम एवं सहअस्तित्व का समर्थन है।
11. ''**एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति**'' अर्थात् सत् एक ही है जिसे विद्वान लोग अलग-अलग प्रकार से वर्णित करते हैं। ऐसा मानने पर धार्मिक विवादों एवं मतभेदों, अतिवादी दृष्टिकोण, साम्प्रदायिकता एवं कट्टरता को रोकने तथा शांति, सद्भाव एवं सामंजस्य की स्थापना करने में सहायता मिलती है।
12. दर्शन हमें मानवीय मूल्यों के प्रति सचेत कर हमें सच्चा मानव बनाने की चेष्टा करता है।
13. दर्शन की एक शाखा नीतिशास्त्र मानव आचरण के आदर्श की मीमांसा करती है, ताकि उसके आधार पर मनुष्य के कर्तव्य-अकर्तव्य और उसके कर्मों के औचित्य-अनौचित्य का निर्धारिण किया जा सके। दूसरे शब्दों में जीवन में क्या उचित है, क्या अनुचित है, हमें क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए, इसकी शिक्षा नीतिशास्त्र प्रदान करता है। यह परोक्ष रूप से जीवन के विभिन्न पक्षों यथा – धर्म, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा, विधि आदि के सन्दर्भ में उचित एवं अनुचित की धारणा के आधार पर मार्गदर्शक का काम करता है। इस प्रकार नीतिशास्त्र मनुष्य के नैतिक उत्थान तथा विचारों एवं जीवन के परिष्करण में सहायक है।

NOTES

14. राग, द्वेष और मोह जीवन में दु:ख, तनाव एवं अशान्ति के मुख्य कारक हैं। भारतीय दार्शनिक परम्परा में सकारात्मक उपायों के माध्यम से इनके निराकरण की बात की गई है। जैसे- जैन दर्शन में त्रिरत्न, बौद्ध दर्शन में अष्टांगिक मार्ग, योग दर्शन में अष्टांग योग आदि।
15. यजुर्वेद में कहा गया है कि **'सहस्त्रवल्शा विवयं रूहेम'** अर्थात् हम सब लोग मिलकर जीवन के अनन्त क्षेत्रों में अनन्त ऊँचाईयों को प्राप्त करें, इस प्रकार यहाँ सर्वमंगल और जीवन के सर्वांगीण उत्थान का भाव विद्यमान है।
16. विभिन्न भारतीय दर्शनों में आत्म संयम, नैतिक अनुशासन, जगत की शाश्वत् नैतिक व्यवस्था (ऋत्) आदि में विश्वास दिखाई देता है।
17. विभिन्न भारतीय दर्शनों के अनुसार संसार एक रंगमंच की भांति है जिसमें विभिन्न मनुष्यों को अपनी योग्यतानुसार कर्म करने का अवसर मिलता है। मनुष्य से आशा की जाती है कि वह अपना कर्म नैतिक ढंग से संपादित करे जिससे उसका वर्तमान तथा भविष्य सुखमय हो सके।

नोट: उपनिषद, गीता एवं ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी के नाम से जाना जाता है। इसमें उपनिषद श्रुति प्रस्थान है, गीता को स्मृति प्रस्थान और ब्रह्मसूत्र को न्याय प्रस्थान कहा गया है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य

भारतीय नीतिशास्त्र में मानव जीवन के आदर्श की विवेचना के साथ-साथ उसकी प्राप्ति के साधन एवं विभिन्न परिस्थितियों में मानव के कर्तव्यों की व्यापक विवेचना की गई है। चार्वाक को छोड़कर समस्त भारतीय दर्शन एक नैतिक व्यवस्था में विश्वास करता है। यही कारण है कि प्रत्येक परंपरावादी भारतीय दर्शन सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक विशेष प्रकार की नीति-संहिता *(Code of ethics)* का प्रतिपादन करता है।

विभिन्न भारतीय दर्शनों में विश्व को एक नैतिक रंगमंच की भांति स्वीकार किया गया है, जिसमें विभिन्न मनुष्यों को अपनी योग्यतानुसार कर्म करने का अवसर मिलता है। मनुष्य से आशा की जाती है कि वह अपना कर्म नैतिक ढंग से संपादित करे जिससे उसका वर्तमान तथा भविष्य सुखमय हो। भारतीय दर्शनिकों की यह मान्यता है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है उसका तद्नुरूप फल उसे भोगना पड़ता है।

704, Ground Floor, Main Road, Opposite Batra Cinema, Mukherjee Nagar, Delhi-09
KGS IAS

भारतीय परंपरा में नीति का शाब्दिक अर्थ है- ले जाना, निर्देशन करना, आचरण, प्रबंधन, या औचित्य है। इस रूप में नीति शब्द का अभिप्राय है- वे नियम जिसके अनुसार आचरण करने पर मनुष्य का सर्वांगीण कल्याण हो, समाज में स्थिरता और संतुलन रहे तथा विश्व में शांति रहे। भारतीय परंपरा में नैतिक पक्ष पर विशेष जोर है। यहाँ नैतिक विवेचना के क्रम में-

- जीवन क्या है?
- जीवन का उद्देश्य क्या है?
- उन उद्देश्यों की प्राप्ति जीवन में किस प्रकार की जानी चाहिए।
- व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में किन उद्देश्यों की प्राप्ति की जानी चाहिए?
- जीवन और समाज में सुख, शांति एवं समृद्धि हेतु किन इच्छाओं का त्याग करना चाहिए?
- सार्वजनिक संबंधों में व्यवहार का आधार क्या होना चाहिए आदि प्रश्नों की विवेचना की गई है। यहाँ ऐसे ग्रंथ भी है जिनमें नीति के ही उपदेश है, जैसे- विदुर-नीति, शुक्र-नीति, चाणक्य-नीति, भर्तृहरि का नीतिशतक आदि। इसके अतिरिक्त उपनिषदों, गीता, रामायण, महाभारत, पंचतंत्र, हितोपदेश आदि ग्रंथों में भी नैतिकता की व्यापक विवेचना की गई है। यहाँ नैतिकता संबंधी प्रश्न धर्म और दर्शन से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

वेद

वेद भारतीय नीतिशास्त्र के प्राचीनतम ग्रंथ है। इसमें जीवन का उद्देश्य सुख एवं ऐश्वर्य को माना गया है। यहाँ प्रेय मार्ग की प्रधानता है जिसमें लौकिक सुखों के भोग पर बल है। वेदों के अंतिम भाग उपनिषदों में प्रेय मार्ग की बजाय श्रेय मार्ग की प्रधानता है।

वेद का अर्थ

1. वेद का सामान्य अर्थ है- ज्ञान या विद्या। चूँकि परंपरानुसार ये ज्ञान के भण्डार हैं, इसीलिए इन्हें वेद कहा गया है।
2. 'वेद' शब्द ज्ञानार्थक विद् धातु से बना है जिसका अर्थ है- ज्ञान।

'वेद' संबंधित परिभाषाएँ

1. वेदों के भाष्यकार **आचार्य सायण** के अनुसार ***वेद वह है जो अभीष्ट की प्राप्ति एवम् अनिष्ट को दूर करने के अलौकिक उपाय का ज्ञान देता है।*** वेद पुरुषार्थ का अलौकिक उपाय बताने वाला स्रोत है।
2. **महर्षि दयानन्द** के अनुसार- "वेद ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं। सभी सत्य विद्याओं का मूल वेदों में विद्यमान है। वेद वह ज्ञान है, जिससे जीवन में सभी को महान् लाभ प्राप्त होता है। यह महान् लाभ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में प्राप्त होता है। वेदों से ईश्वर, जीव और प्रकृति का सम्यक् बोध होता है।"

'वेद' के प्रकार

विषयवस्तु के आधार पर वेदों के चार प्रकार हैं -

1. ऋग्वेद 2. यजुर्वेद 3. सामवेद 4. अथर्ववेद

वेद का महत्व

1. सर्वहित ज्ञान का भण्डार है।
2. जो प्रत्यक्ष एवम् अनुमान प्रमाण द्वारा नहीं जाना जा सकता है उसे हम वेद से जान सकते हैं।
3. वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं जिसमें प्राचीनतम मानव के चिन्तन निहित है।
4. मनुस्मृति में कहा गया है- 'नास्तिको वेद निन्दक:'। इस रूप में वेद आस्तिक व नास्तिक के वर्गीकरण का मुख्य आधार है।
5. भारतीय दर्शन के मूल तत्व इसमें पाए जाते हैं। इसे भारतीय धार्मिक चिन्तन का मूल स्रोत कहा जा सकता है।
6. भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्राचीनतम साक्ष्य इसमें निहित हैं।

NOTES

ऋत् की अवधारणा

शब्दिक अर्थ है- उचित या सही अथवा नैतिक सद्मार्गी। वस्तुत: ऋत् वह नियम है जिससे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड संचालित होता है। यह व्यवस्था का नियम है। ऋत् का पालन प्रकृति के सभी अवयव, देवी-देवता भी करते हैं।

ऋत के तीन आयाम या क्षेत्र हैं 1. प्राकृतिक नियम - वेदों में ऋत का प्रारंभिक अर्थ था- वस्तुओं के मार्ग का नियमन। आशय है कि ब्रह्माण्ड के सभी पिण्ड अपने-अपने क्षेत्र में नियमित रूप से गतिशील है। इस रूप में ऋत् का अर्थ विश्व की व्यवस्था एवं सामंजस्य से है। 2. नैतिक नियम- इस रूप में ऋत् सदाचार के मार्ग को बताता है जिसका अनुसरण मनुष्य को करना चाहिए। इस रूप में यह नैतिक व्यवस्था को इंगित करता है। ऋत् के इस नियम में ही कर्म नियम का बीज छुपा हुआ है।

कर्मनियम - अच्छे कर्मों का अच्छा व बुरे कर्मों का बुरा फल अवश्य मिलता है।

कृत प्रणाश - किए गए कर्म फल का नष्ट हो जाना।

अकृतभ्युपगम - बिना किए गए कर्मों के फल को प्राप्त कर लेना।

कर्मनियम के अनुसार कृतप्रणाश व अकृतभ्युपगम नहीं होता है।

कर्मकाण्ड नियम

इस रूप में ऋत धार्मिक क्रियाओं के नियम को बताता है।

- ऋत का संचालक व संरक्षक वरूण देवता हैं। इन्हें वेदों में (गोपा ऋतस्य) ऋत का संरक्षक कहा गया है। वरूण संसार के प्राकृतिक एवम् नैतिक नियमों के संरक्षक हैं।
- **ऋतजात:** सभी देवी-देवता ऋत से संबंधित हैं। सभी इसे स्वीकार करते हैं। इसके अनुसार आचरण करते हैं। इसलिए देवताओं को ऋतजात कहा गया है।

ऋत- ऋत जगत् की शाश्वत, अलंघनीय प्राकृतिक व नैतिक व्यवस्था का नाम है, जिसके संचालक एवं संरक्षक वरूण हैं।

ऋण की अवधारणा:

वैदिक परंपरा में व्यक्ति के कर्त्तव्य एवं सामाजिक दायित्व से संबंधित ऋणों की विवेचना की गई है। व्यक्ति से तीन प्रकार के ऋणों से मुक्ति पाने को कहा गया है। ये हैं-

1. पितृ ऋण :- पूर्वजों या पितरों का तर्पण तथा धर्मानुसार संतान उत्पन्न करना
2. देव ऋण :- देवताओं की प्रार्थना, यज्ञ का अनुष्ठान और
3. ऋषि ऋण :- वेदादि का अध्ययन।

महाभारत में इन ऋणों में 'मनुष्य ऋण' नामक ऋण को भी सम्मिलित किया गया है। इसमें मनुष्य मात्र के प्रति ऋणी होने का भाव विद्यमान है। इसमें समाज में स्वयं को दूसरों के प्रति ऋणी मानकर व्यापक सामाजिक हित एवं सबकी समृद्धि की भावना से कार्य करने का संकल्प विद्यमान है।

यज्ञ

यज्ञ के मुख्यत: तीन प्रकार हैं- 1. श्रौत यज्ञ, 2. स्मार्त यज्ञ, 3. पंचमहायज्ञ।

श्रौतयज्ञ सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य की कामना हेतु किये जाते थे। राजसूय यज्ञ, अश्वमेघ यज्ञ आदि श्रौत यज्ञ है। स्मार्त यज्ञ निष्काम भाव से केवल देवताओं के पूजन हेतु संपादित किए जाते थे। इसमें विभिन्न देवताओं के नाम से यज्ञ होते थे।

वेदों में गृहस्थों के लिए **पंचमहायज्ञों** का विधान है। इसका उद्देश्य विधाता, प्राचीन ऋषियों, जीवों तथा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करना था। ये पंचमहायज्ञ हैं- 1. ब्रह्मयज्ञ (स्वाध्याय), 2. देवयज्ञ (प्राकृतिक शक्तियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने हेतु), 3. भूतयज्ञ (प्राणियों के प्रति करूणा), 4. पितृयज्ञ (पितरों के प्रति श्रद्धा), 5. नृयज्ञ या मनुष्य यज्ञ (अतिथियों के प्रति आदर-सत्कार)।

तीन प्रकार के कर्म

वैदिक परंपरा में कर्मों के तीन प्रकार स्वीकार किये गये हैं-

- ***प्रारब्ध, संचित*** और ***संचीयमान कर्म***।
- प्रारब्ध पूर्व जन्म के कर्म हैं जिनके फल की प्राप्ति हो रही है। हमारी वर्तमान स्थिति का कारण प्रारब्ध कर्म है। संचित कर्म भी पूर्व जन्म के कर्म हैं जिनके फल की प्राप्ति अभी नहीं हुई है। संचीयमान कर्म का संबंध वर्तमान जीवन के कर्म से है पर जिसका फल भविष्य से मिलेगा।

धार्मिक बहुलतावाद का समर्थन

ऋग्वेद में यह कहा गया है कि- ***"एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति"*** अर्थात् सत् एक ही है, उसे ही विभिन्न विद्वान अलग-अलग प्रकार से वर्णन करते हैं। *गीता में यह कहा गया है कि- "जहाँ मुझे जो जिस रूप में याद करेगा उस रूप में मैं वहाँ उपलब्ध रहूँगा।"*

उपनिषद्

उपनिषद् का शाब्दिक अर्थ- 'उपनिषद्' शब्द 'उप' (निकट), 'नि' (नीचे) और 'सद्' (बैठना) से मिलकर बना है, अर्थात् नीचे निकट बैठना।

शिष्य का गुरू के समीप उससे निम्न आसन पर श्रद्धापूर्वक, ध्यानपूर्वक परमतत्व संबंधी गूढ़ उपदेश सुनने के लिए बैठना।

- पाल डायसन के अनुसार उपनिषद् का अर्थ 'रहस्यमय उपदेश' है।

उपनिषदों में श्रेय व प्रेय का भाव: श्रेय व प्रेय के रूप में उपनिषदों में मानव के सामने दो मार्ग बताए गए हैं। जो मार्ग नित्य आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त कराने वाला है, वह श्रेय का मार्ग है जबकि जो सांसरिक सुख वैभव की ओर ले जाने वाला है, वह प्रेय मार्ग है। इस प्रकार श्रेय में जहाँ नित्य की कामना है वहीं प्रेय में अनित्य की।

उपनिषदों के अनुसार श्रेय मार्ग ही श्रेष्ठ है। श्रेय का फल ब्रह्म की प्राप्ति है जो आनन्द स्वरूप है। श्रेय की प्राप्ति के लिए इन्द्रिय नियंत्रण, श्रवण, मनन, निदिध्यासन की आवश्यकता होती है।

उपनिषदों की संख्या- मुक्तिकोपनिषद ये उपनिषदों की संख्या 108 बतायी गई है। जिनमें 11 महत्वपूर्ण है जिन पर शंकर ने भाष्य लिखा है। ये हैं- ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, श्वेताश्वर।

* सबसे प्राचीन उपनिषद् छान्दोग्य व वृहदारण्यक उपनिषद् है।

उपनिषदों को वेदान्त क्यों कहा जाता है?

- वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है- वेदों का अन्त। वैदिक साहित्य का अन्तिम भाग उपनिषद् है, इसीलिए इसे वेदान्त कहा जाता है। (वेद → संहिता → ब्राह्मण → आरण्यक → उपनिषद्) - रचनाक्रम के अनुसार समस्त वैदिक साहित्य के अन्त में आने वाली ज्ञान प्रधान रचनाओं की ही विशिष्ट संज्ञा उपनिषद् है।
- वेदों का सार/निचोड़ या निष्कर्ष उपनिषद्ों में निहित है। इसीलिए इसे वेदान्त कहा जाता है।
- वैदिक ज्ञान का अन्त, चरम परिणति या पर्यवसान ब्रह्म-ज्ञान के रूप में होता है। चूंकि उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म-ज्ञान ही है, इसलिए इन्हें वेदान्त कहा जाता है।

उपनिषदों का महत्व: 1. भारतीय दर्शन का मूल स्रोत है। 2. वेदान्त की प्रस्थानत्रयी में उपनिषद् मूल प्रस्थान है।

प्रस्थानत्रयी : उपनिषद्, गीता व ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी कहा जाता है।

प्रस्थानत्रयी: 'प्रस्थानत्रयी' शब्द में प्रस्थान से तात्पर्य है- जो ब्रह्म विद्या का प्रतिष्ठान करता हो। *उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र को प्रस्थानत्रयी कहा जाता है* क्योंकि ये तीनों ही ब्रह्म विद्या के आधारभूत ग्रंथ हैं।

NOTES

ब्रह्म-सूत्र : उपनिषद् का सूत्रबद्ध, शृंखलाबद्ध संकलन है। इसके रचयिता वादरायण हैं।

गीता : उपनिषदों का सार गीता है।

वेदान्त: वेदान्त का शाब्दिक अर्थ है – वेदों का अंत। वेदों का अंतिम भाग, सार एवं चरम परिणति उपनिषद् है। मूलत: उपनिषदों पर आधारित होने वाले दर्शन को वेदान्त कहा जाता है। वेदान्त दर्शन के अंतर्गत शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि की गणना की जाती है।

कठोपनिषद्: यम व नचिकेता संवाद

रथ का रूपक: मनुष्य का शरीर रथ के समान है। विवेक या आत्मा सारथी के समान है। मन लगाम है। इन्द्रिय घोड़े हैं। जो व्यक्ति विवेक रूपी सारथी के हाथों मन की लगाम थमाता है, उसकी इन्द्रियाँ नियंत्रण में रहती हैं, अन्यथा दुष्ट घोड़ों की भांति कुपथ पर ले जाती है।

इस रूप में यहाँ भौतिक सुखों पर आध्यात्मिक सुखों को वरीयता दी गई है।

प्रश्न : ''असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय।'' - इसका आशय क्या है?

उत्तर : बृहदारण्यक उपनिषद् (1 : 3, 27) से लिये गये उपरोक्त कथन का आशय है कि-''मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।''

रामायाण और महाभारत दोनों में धर्म एवं अधर्म, नीति एवं अनीति के मार्ग पर चलने वालों के अच्छे और बुरे परिणामों को दिखाया गया है। यहाँ यह बताया गया है कि क्या धर्म है और क्या अधर्म है। हमें किस समय कैसा आचरण करना चाहिए। इन सबको महापुरूषों के चरित्रों के उदाहरणों, उपदेशों एवं विचारों आदि के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

सामाजिक प्रगति

सामाजिक प्रगति एवं व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की अवधारणा को हम वैशेषिक दर्शन के 'धर्म' में देख सकते हैं। यहाँ धर्म के संदर्भ में कहा गया है कि- ***''यतो अभ्युदय नि:श्रेयस्य सिद्धिश्च धर्म:''***

अर्थात् जिससे अभ्युदय अर्थात् भौतिक कल्याण और नि:श्रेयस अर्थात् आध्यात्मिक उत्थान दोनों हों, वहीं धर्म है। यह अवधारणा सामाजिक प्रगति के संदर्भ में भी लागू होती है। *सामाजिक प्रगति के संदर्भ में हम ऐसा कह सकते हैं कि जब समाज अंधकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर, अव्यवस्था से सुव्यवस्था की ओर, अशुभ से शुभ की ओर, अवैज्ञानिकता से वैज्ञानिकता की ओर बढ़े तो फिर उसे सामाजिक प्रगति की संज्ञा दे सकते हैं।* यहाँ वेदों में यह कहा गया है कि- ***"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय"।***

भगवद्गीता : स्वधर्म, निष्काम कर्मयोग

- श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि है। यह **उपनिषदों का सार** है। भारतीय संस्कृति की आत्मा है। गीता के रचयिता महर्षि वेदव्यास हैं।
- भगवद्गीता को संक्षेप में गीता कहा जाता है। इसमें भगवान कृष्ण का उपदेश है। यह महाभारत के भीष्म-पर्व के 25वें से 42वें अध्याय तक का भाग है। यह मूलत: संस्कृत में है और इसमें 18 अध्याय हैं। इसमें कुल 700 श्लोक हैं।
- गीता के अनुसार ***योग का अर्थ*** है- जीवात्मा का परमात्मा से मिलन। यहाँ इसके साधन के रूप में ज्ञान, कर्म और भक्ति को स्वीकार किया गया है।
- योगेश्वर कृष्ण के अनुसार, कर्मों में कुशलता ही योग है– ***'योग: कर्मसु कौशलम्*** तात्पर्य है कि जो व्यक्ति अपने कर्म का सम्यक् रूप से निष्पादन करता है वही योगी है। गीता में ईश्वर को सबसे बड़ा योगी माना गया है।
- ***लोक-संग्रह क्या है***- गीता के अनुसार लोक संग्रह का आशय है- सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करना। व्यावहारिक नैतिकता के स्तर पर लोकसंग्रह अर्थात् सामाजिक कल्याण को परम पुरुषार्थ माना गया है। यही भगवद्गीता का सर्वोच्च सामाजिक आदर्श है। यही मुक्ति का द्वार है।
- नीति के आध्यात्मिक आधार पर मानव के कर्तव्य का क्रमानुसार निर्णय 1. स्वभाव → स्वधर्म → स्वकर्म।
- स्वधर्म एवं स्वभाव में सहज संबंध है। जो आध्यात्मिक दृष्टि से स्वधर्म है वहीं व्यावहारिक दृष्टि या सामाजिक दृष्टि से 'स्वकर्म' हो जाता है।
- बुद्धियोग का अर्थ है- रागद्वेष से रहित शुद्ध अनासक्त कर्त्तव्य बुद्धि।
- गीता में **आत्मलाभ** को सभी लाभों से श्रेष्ठ बताया गया है।
- गीता की व्याख्या- विभिन्न प्रकारों से की गई है।

शंकर	-	ज्ञानमार्ग	रामानुज	-	भक्तिमार्ग
तिलक	-	कर्ममार्ग	गाँधी	-	अनासक्तियोग
अरविन्द	-	पूर्णयोग			

- ***गीता के प्रमुख भाष्यकार या व्याख्याकार***-

  प्राचीन काल में : शंकर, रामानुज, मध्वाचार्य

  आधुनिक काल में : गाँधी, तिलक, श्रीमती एनी बेसेन्ट, विनोबा भावे, श्री अरविन्द

  राजनयिक : राधाकृष्णनन

  क्रांतिकारी : बाल गंगाधर तिलक (कर्मयोग की प्रधानता)
- **योग-क्षेम: जो नहीं है उसके प्राप्त करना और जो है उसकी रक्षा करना।**
- ***गीता मतानुसार ज्ञान क्या है:*** गीता मतानुसार सांसारिक विषय-वासना और महत्व से परे प्रत्येक प्राणी को परमात्म स्वरूप, समान भाव से देखना ही ज्ञान का लक्षण है।
- चार वर्ण के निर्धारण का आधार– गुण, कर्म और स्वभाव।
- ***कर्मयोग का आशय क्या है:*** गीता मतानुसार कर्मफलासक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से सामाजिक कर्त्तव्यों एवं स्वधर्म का पालन करना ही कर्मयोग है।
- **कर्मयोगी :** जो जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दु:ख के प्रति समान भाव रखते हुए, राग-द्वेष से रहित होकर निष्काम भाव से अपने स्वधर्म का पालन करता है, वही कर्मयोगी है।
- **गीता में प्रकृति तत्व क्या है? :** गीता मतानुसार प्रकृति त्रिगुणात्मक अर्थात् सत्व, रज और तम से युक्त है। प्रकृति जगत का मूल कारण है जो जड़, अनादि एवं सदैव परिवर्तनशील है। प्रकृति को यहाँ अव्यक्त भी कहा गया है।

  स्वधर्म: गीता में निष्काम भाव से कर्म करने का उपदेश दिया गया है। इसके लिये स्वधर्म का पालन आवश्यक

NOTES

है। 'स्वधर्म' का अर्थ है - अपना-अपना धर्म या अपना निर्धारित कर्त्तव्य। गुण और कर्म के आधार पर जो चार प्रकार के वर्णों की रचना हुई है, उन वर्णों के लिये निर्धारित कर्म करना ही स्वधर्म है। इसे ही सहज धर्म, स्वकर्म, नियत कर्म, स्वभाव कर्म आदि कहा गया है। स्पष्ट है कि यहाँ 'धर्म' शब्द कर्म या कर्त्तव्य के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

गीता के अनुसार- स्वधर्म का अर्थ 'वर्ण-धर्म' और 'आश्रम धर्म' है। स्पष्ट है कि ***मनुष्य द्वारा अपने वर्ण के अनुरूप निर्धारित कर्मों का निष्काम भाव से पालन करना ही स्वधर्म है।***

गीता स्वधर्म के संपादन का आध्यात्मिक मूल्य भी स्पष्ट करती है। इसके अनुसार स्वधर्म का पालन करने से मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है। मोक्ष का अधिकारी बनता है। वस्तुतः गीता द्वारा स्वधर्म के प्रतिपादन का लक्ष्य यह था कि समाजव्यवस्था एवं सृष्टि की गति अबाध रूप से चलती रहे, लोककल्याण होता रहे तथा समाज में अधिकारों के लिये कोई संघर्ष न हो।

आधुनिक युग में जबकि लोग अपने कर्त्तव्यों को भूलकर अधिकारों के लिए लड़ रहे हैं, गीता द्वारा अपने कर्त्तव्यों के पालन का आदेश और भी अधिक समीचीन हो गया है।

निष्काम कर्म: निष्काम कर्म को कर्मयोग भी कहते हैं। निष्काम कर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति के बीच, सुखवाद एवं वैराग्यवाद के मध्य सुन्दर सामंजस्य स्थापित करता है। प्रवृत्ति का आदर्श कर्म का आदर्श है, सुख का आदर्श है। निवृत्ति का आदर्श वैराग्य का आदर्श है जो सभी कर्मों के परित्याग एवं सांसारिक संबंधों से विमुख होने का समर्थक है। गीता के अनुसार कर्म करना ही मनुष्य के अधिकार में है। कर्म का फल मनुष्य के अधिकार में नहीं है। मनुष्य को कर्म-फल की वासना से कर्म नहीं करना चाहिए। साथ-ही-साथ अकर्मण्यता भी नहीं आनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि मनुष्य को कर्त्तव्य-भावना से प्रेरित होकर कर्म करना चाहिए, कर्मफल की भावना से प्रेरित होकर नहीं। कर्म-फल पर कर्त्ता का पूर्ण अधिकार नहीं होता। फल की कामना किये बिना मात्र कर्त्तव्य समझकर कर्म करना ही कर्मयोग है। अपने सभी कर्मों तथा उनके परिणामों को ईश्वर को अर्पित कर अनासक्त भाव से कर्म करना ही निष्काम कर्म है। निष्काम कर्म का सिद्धान्त बतलाता है कि मनुष्य को कर्त्तव्य-बुद्धि से कर्म करना चाहिए, फल-बुद्धि से नहीं।

क्या है? ←——— निष्काम कर्म	**———→ क्या नहीं है?**
अनासक्त कर्म *(Disintegrated action)*	कर्म संन्यास (निवृत्ति) *(Disintegrated action)*
प्रवृत्ति में निवृत्ति	प्रवृत्ति से निवृत्ति
तृष्णा रहित कर्म	कर्म का त्याग (नैष्कर्म्य)
ईश्वरार्थ कर्म	निष्क्रियता (अकर्मण्यता)
कर्मफलाशक्ति का त्याग	

गीता के निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता *आज भी निर्विवाद है। कर्म को अकर्म से श्रेयस्कर बताते हुए निष्काम भाव से कर्त्तव्य-कर्म के सम्पादन का आदेश गीता की अपनी सार्वभौम विशेषता है। यहाँ जीवन में होने वाले इस* ***नैतिक द्वंद्व का समाधान*** *मिलता है आखिर कर्तव्य और परिणाम में कौन अधिक महत्वपूर्ण है। जहाँ अर्जुन युद्ध के भावी परिणाम को देखकर संशकित, भयभीत, हतोत्साहित एवं किंकर्तव्यविमुढ़ है और युद्ध करने से बचना चाहता है वहीं श्रीकृष्ण उसे स्वधर्म के पालन का उपदेश देते हैं। वे निष्काम भाव से अर्जुन को अपने कर्तव्य के पालन का संदेश देते हुए कहते हैं कि-'कर्म करो, फल की चिंता मत करो।' वर्तमान भारतीय परिवेश में, जबकि सर्वत्र भ्रष्टाचार और अनाचार का बोलबाला है, निष्काम कर्मयोग की उपयोगिता और भी बढ़ गई है।*

आपद् धर्म

किसी आकस्मिक या असाधारण परिस्थिति में अपने अस्तित्व रक्षा या पुर्नविकास हेतु व्यक्ति को धर्मशास्त्रों से ऐसी छूट मिली है कि वह अपने विशिष्ट कर्तव्यों का निर्वाह कुछ समय के लिए स्थगित कर दे, दूसरे वैकल्पिक कर्तव्य करें। परन्तु विकल्प भी धर्मशास्त्र- सम्मत होना चाहिए। परन्तु- सामान्य धर्म के पालन के सम्बध में कोई छूट नहीं थी। इसका पालन तो प्राणों को संकट में डालकर भी करना चाहिए।

- गीता में ***कर्म के दो मुख्य प्रकार*** हैं- 1. सकाम कर्म (आसक्त कर्म) 2. निष्काम कर्म (अनासक्त कर्म)। सकाम कर्म वह है जो शारीरिक सुख या लौकिक सुख अर्थात् फल प्राप्ति की कामना से किया जाता है। जबकि निष्काम कर्म कामनारहित कर्म है। कर्मफल आसक्ति से रहित होकर किया जाने वाला कर्त्तव्य ही निष्काम कर्म है।

NOTES

सकाम कर्म बन्धन का कारण है जबकि निष्काम कर्म तृष्णा रहित कर्म है। ऐसे कर्म से बंधन नहीं होता। निष्काम कर्म को ही गीता में कर्मयोग कहा गया है। गीता निष्काम कर्म का संदेश देती है।

- ***दैवी संपदा एवं आसुरी संपदा***- गीता में धर्म को दैवी-सम्पदा माना गया है, अर्थात् सद्गुण माना गया है। जबकि अधर्म को आसुरी सम्पदा माना गया है। दैवी संपदा (अभय, अन्तःकरण की स्वच्छता, सत्य, अक्रोध, शान्ति, क्षमा, तेज, सब प्राणियों में दया, स्वाध्याय, अनासक्त-भाव आदि) से मुक्ति की प्राप्ति होती है। जबकि आसुरी संपदा (पाखंड, घमंड, क्रोध, परनिन्दा, मिथ्या भाषण, कटु वचन, अन्तःकरण की अशुद्धि आदि) से बंधन होता है।

स्थितप्रज्ञ का अर्थ है- दैवी प्रज्ञा में स्थित- (स्थितप्रज्ञ) अर्थात् जिसको प्रत्येक समय प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक जीव में ईश्वर दिखाई दें अर्थात् सभी अवस्थाओं में ईश्वर से तादात्म्य रखे। *(Identical Relation)* यहाँ स्थित का अर्थ स्थिर और प्रज्ञा बुद्धि का नाम है, अर्थात् ***जिसकी बुद्धि अपने कर्तव्य पर स्थिर या दृढ़ हो गयी हो, वही स्थितप्रज्ञ है।***

- प्रज्ञा में स्थित *(Stable Intellect)* : *जो व्यक्ति राग, द्वेष, मोह एवं कर्म-फलासक्ति से रहित होकर निष्काम भाव से अपने चित्त को ईश्वर में लगाता है, इन्द्रियों को अपने वश में कर ममता रहित एवं अहंकार रहित होकर परम शान्ति को प्राप्त करता है, वह स्थितप्रज्ञ है। यही स्थिति* ***'ब्राह्मी स्थिति'*** *है।*
- सुख-दुःख में समस्थिति
- इच्छाओं का दमन नहीं अपितु इच्छाओं का व्यवस्थीकरण है।

☞ गीता में ज्ञान योगी को 'समदर्शी' कहा गया है क्योंकि यह सारे प्राणियों को समभाव से देखता है।

गीता और कांट में अंतर : यद्यपि कांट और गीता दोनों कर्तव्यों के संपादन की बात करते हैं, कर्म के परिणाम की बजाय कर्म के हेतु को महत्व देते है तथा लोककल्याण या सार्वभौमिकता की बात करते हैं, फिर भी दोनों में अंतर हैं-

1. कांट अपने दर्शन में इच्छाओं एवं भावनाओं का दमन कर बुद्धि अनुसार कार्य करने की बात करते है जबकि गीता के निष्काम कर्म में भावनाओं के दमन या बहिष्कार की बजाय उनका परिष्करण कर उनके दैवीकरण की शिक्षा दी गई है।
2. कांट का नीति शास्त्र नियमवादी है। वे कठोरता से नियम पालन की बात करते है। जबकि गीता प्रयोजन वादी है। मोक्ष की प्राप्ति जीवन का चरम लक्ष्य है।
3. कांट के नैतिक नियम आदेश है। इनके पालन में व्यक्ति बाध्यता का अनुभव करता है। निष्काम कर्म में मनुष्य द्वारा स्वभाविक रूप से पालन की बात की गई है।
4. कांट के अनुसार नैतिक नियम की उत्पति बौद्धिक प्राणी द्वारा की गई है। जबकि निष्काम कर्म का उपदेश भगवान ने दिया है। गीता के अनुसार नैतिक नियम ईश्वर से निकलते हैं।
5. गीता स्वकर्तव्य (स्वधर्म) को कर्तव्य और श्रेय (उच्चतम आध्यात्मिक तत्व) का समन्वय मानती है।

सिविल सेवा हेतु प्रशासक को बौद्धिक सत्यनिष्ठा, परानुभूति, सेवा की भावना, आदि गुणों से युक्त होना चाहिए तथा उसे व्यक्तिगत लाभ या हानि को ध्यान न रखकर सार्वजनिक हित में अपने कर्तव्यों को दृढ़तापूर्वक संपादन करना चाहिए ताकि सुशासन की स्थापना हो।

गीता में निवृत्ति और प्रवृत्ति का समन्वय

गीता का निष्काम कर्मयोग दो आदर्शों- 'निवृत्ति' और 'प्रवृत्ति' के बीच समन्वय प्रस्तुत करता है। समस्त कर्मों से संन्यास ले लेना और समाज से संबंध विच्छेद कर लेना निवृत्ति का आदर्श है। प्रवृत्ति का आदेश समाज में रहते हुए कर्म करना है। गीता इन दोनों के बीच निष्काम कर्मयोग के माध्यम से समन्वय लाती है।

कर्म फल के प्रति अनासक्ति या त्याग निवृत्ति का प्रतीक है और लोकहित को ध्यान में रखकर कर्म करते रहना प्रवृत्ति का द्योतक है। गीता का यह उपदेश कर्म से संन्यास या निष्क्रियता को स्वीकार नहीं करता बल्कि कर्मफल आसक्ति के त्याग का विचार देकर त्याग की भावना को सुरक्षित रखता है। गीता 'प्रवृत्ति से निवृत्ति' नहीं, बल्कि 'प्रवृत्ति में निवृत्ति' का समर्थन करती है।

NOTES

वर्तमान में गीता की प्रासंगिकता/उपयोगिता (जीवन एवं प्रशासन में)

1. जीवन रूपी रणभूमि में दुविधाओं के निवारण एवं कर्त्तव्यों का दृढ़तापूर्वक पालन करने की प्रेरणा गीता से मिलती है।
2. गीता जीवन में उत्पन्न होने वाले नैतिक द्वन्द्वों के निराकरण एवं संवेगात्मक बुद्धि के विकास में मददगार है।
3. सांसारिक मोह-माया और भाई-भतीजावाद से ऊपर उठकर न्याय की रक्षा एवं स्थापना हेतु कार्य करने की प्रेरणा देती है।
4. गीता हमारे जीवन का मार्गदर्शन करती है। यहाँ सही और गलत के निर्धारण के क्रम में भावना और संवेग के स्थान पर विवेक एवं न्याय पर बल दिया गया है।
5. जब न्याय और न्याय के बीच संघर्ष चल रहा हो तो फिर उस समय कायरता, दुर्बलता दिखाना या स्वार्थपूर्ति हेतु मौन रहना या झूठी भावुकता में बहना पाप है। मानवीय गौरव और न्याय की स्थापना के लिए यदि कष्ट या दु:ख भी झेलना पड़े तो उसे सहर्ष स्वीकार करते हुए अपने कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ता पूर्वक आगे बढ़ना ही श्रेयष्कर है।
6. जनता की सेवा प्रशासनिक अधिकारियों का स्वधर्म है। अत: उनकों मन, वचन और कर्म से जनता की सेवा कर 'लोकऋण' से मुक्त होने का प्रयास करना चाहिए। उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक अधिकारियों के वेतन, भत्ते एवं अन्य सुविधाओं पर होने वाला खर्च भारत की संचित निधि से दिया जाता है, जिसमें जनता से एकत्रित टैक्स को भी जमा किया जाता है। इस रूप में प्रशासनिक अधिकारी जनता के ऋणी हैं।
7. संवेगात्मक बुद्धि के विकास में गीता की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। यहाँ इंद्रियों, वासनाओं एवं मन को विवेक के नियंत्रण में रखकर कार्य संपादन की बात की गई है। यहाँ यह कहा गया है कि काम, क्रोध, भय, लोभ आदि किसी भी प्रकार से अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए।
8. समाज के कमजोर वर्गों के प्रति परानुभूति, सहिष्णुता एवं करूणा के भाव को बढ़ाने में मददगार है।
9. गीता में जीवन के विभिन्न पक्षों एवं क्रियाकलापों में विचार एवं कार्य, लक्ष्य एवं प्राप्ति, योजना एवं प्रदर्शन में सम्यक् संतुलन बनाते हुए समस्याओं के त्वरित एवं प्रभावपूर्ण समाधान की बात की गई है। यहां उन्नत प्रबंधन की विशेषताएं दिखाई देती है। आधुनिक प्रशासन में भी प्रबंधन की भूमिका महत्वपूर्ण हो गई है। गीता के अध्ययन से समस्याओं को समझने और उनको सुलझाने की तकनीकों का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रशासन में यह अत्यंत मददगार है।
10. गीता में कहा गया है कि कर्म में कुशलता ही योग है। प्रशासनिक अधिकारियों को भी अपना कार्य संयमित होकर कुशलता एवं प्रभावपूर्ण तरीके से संपन्न करना चाहिए।
11. गीता में टीमवर्क, समस्या अनुसार रणनीति बनाने, सदस्यों का मनोबल बढ़ाने, नवाचार करने, समझाने बुझाने के कौशल, नेतृत्व क्षमता, सीमित संसाधनों के समुचित उपयोग आदि की स्थिति दिखाई देती है। प्रशासन के लिए ये सभी मददगार हैं।

गीता में समन्वय दृष्टि प्रधान है-

1. गीता में जीवन के चरम आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हेतु ज्ञान, कर्म और भक्ति तीनों को स्वीकार किया गया है।
2. गीता में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग में समन्वय दिखाई देता है। यहाँ प्रवृत्ति में निवृत्ति की बात की गयी है।
3. गीता में व्यवहार और परमार्थ का भी समन्वय है। यहाँ व्यवहार के स्तर पर योगशास्त्र और परमार्थ के स्तर पर ब्रह्मविद्या की अवधारणा प्रस्तुत की गयी है। इसीलिए गीता के प्रत्येक अध्याय के अंत में यह कहा गया है कि - ''ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे''।
4. यहाँ वेदों और उपनिषदों में जीवन संचालन संबंधी बिखरे मोतियों को एक माला में सुसंगठित कर दिया गया है।
5. यहाँ उपनिषदों के निर्गुण ब्रह्म और भागवत के ईश्वरवाद के बीच भी समन्वय दिखाई देता है। निर्णुण ब्रह्म परब्रह्म है जबकि ईश्वर जगत का संचालक है।

पुरुषार्थ

'पुरुषार्थ' का अर्थ है- पुरुष या मनुष्य का लक्ष्य। भारतीय नीतिशास्त्र में जीवन के सर्वांगीण विकास (नैतिक, शारीरिक, भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक) हेतु चार पुरुषार्थों को स्वीकार किया गया है। ये चार उद्देश्य या पुरुषार्थ हैं- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनमें मोक्ष सर्वोच्च पुरुषार्थ है। अन्य तीन पुरुषार्थ इस परम लक्ष्य की प्राप्ति के साधन हैं। यह इस प्रकार है-

- धर्म: 'धर्म' शब्द संस्कृत के 'धृ' धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है, धारण करना अर्थात् जो संसार को धारण करे, वह धर्म है। महाभारत में धर्म की परिभाषा धारण करने के अर्थ में की गयी है। धर्म प्रजा को धारण करता है। कणाद ने धर्म के संबंध में लिखा है कि जिससे अभ्युदय (सांसारिक कल्याण) और नि:श्रेयस (आध्यात्मिक कल्याण) की प्राप्ति हो वह धर्म है। मनु ने लिखा है अर्थात् आचार सर्वश्रेष्ठ धर्म है। महात्मा गांधी भी नैतिकता को ही धर्म मानते हैं। धर्म मनुष्य के उन सभी कर्त्तव्यों की समष्टि है जिसके द्वारा मनुष्य इस संसार में मानवोचित जीवन व्यतीत कर सकता है। धर्म ही हमारे सामाजिक व्यवहारों को नियंत्रित कर सामाजिक व्यवस्था की स्थापना में सहायता प्रदान करता है। इसके अभाव में द्वेष, बैर-भाव, अत्याचार को बढ़ावा तथा प्रेम और विश्वास की कमी उभरती है। वर्तमान प्रशासन को भी धर्म आधारित होना चाहिए।
- **अर्थ:** पुरुषार्थों में 'अर्थ' को दूसरा स्थान दिया गया है। मनुष्य के जीवन में 'अर्थ' का महत्व स्वीकार किया गया है। लौकिक जीवन व्यतीत करने के लिये अर्थ की आवश्यकता होती है। 'अर्थ' का तात्पर्य धन-संपत्ति, भौतिक उपकरण और सुख के साधनों से है। इससे सभी प्रयोजनों की सिद्धि होती है। कौटिल्य ने कहा है कि अर्थ ही धर्म और काम का मूल है। धन से ही धर्म भी संभव है। महात्मा गांधी कहते हैं कि धनोपार्जन शुभ साधनों के द्वारा ही करनी चाहिए, अशुभ साधनों के द्वारा नहीं। पुन: भारतीय आचारशास्त्र आवश्यकता भर ही धन-संचय का आदेश देता है। आवश्यकता से अधिक धन संचय करने वाला मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता।
- **काम:** भारतीय आचारशास्त्र में 'काम' को तीसरा पुरुषार्थ माना गया है। वात्स्यायन ने 'काम' शब्द के दो अर्थों का संकेत किया है, विस्तृत अर्थ और संकुचित अर्थ। विस्तृत या व्यापक अर्थ में 'काम' शब्द का प्रयोग सभी इन्द्रियों से प्राप्त सुख के लिये होता है। महाभारत में इसी अर्थ में 'काम' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'कामसूत्र' में कहा गया है कि अभिमान सहित रस से ओत-प्रोत सभी इन्द्रियों का आनंद जिससे उत्पन्न होता है वही काम है। संकुचित अर्थ में 'काम' शब्द का प्रयोग यौन सुख के लिये किया गया है। यौन सुख के दो अंग हैं : यौन सुख की प्राप्ति और संतान की उत्पत्ति। दूसरा अंग बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि संसार की परम्परा इसी से चलती है। भारतीय नीतिशास्त्र में यौन सुख को अनैतिक नहीं माना गया है। तात्पर्य यह है कि व्यक्ति और समाज दोनों के सामंजस्यपूर्ण उन्नयन के लिये धर्म-सम्मत रूप से काम की प्राप्ति अपेक्षित है। धर्म-सम्मत काम को ही पुरुषार्थ माना गया है।

NOTES

- **मोक्षः** 'मोक्ष' परम् पुरुषार्थ है। यह मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। इसी कारण से इसे निःश्रेयस भी कहते हैं। 'मोक्ष' शब्द की उत्पत्ति 'मुक्' धातु से हुई है जिसका तात्पर्य मुक्त करना है। अतएव मोक्ष का अर्थ आत्मा की मुक्ति है। मोक्ष के लिये मुक्ति, निर्वाण, कैवल्य आदि शब्दों का भी प्रयोग होता है।

भारतीय आचारशास्त्र की मान्यता है कि कि संसार में मानव जीवन दुःखपूर्ण है। इस दुःख का कारण बंधन है। जीवन में दुःखों की विद्यमानता और जन्म-मरण चक्र में पड़े रहना ही बंधन है। जबकि जीवन में दुःखों की आत्यांतिक निवृत्ति और जन्म-मरण चक्र की समाप्ति ही मोक्ष है।

अधिकांश भारतीय दर्शनों में यह माना गया है कि बंधन का मूल कारण अज्ञान है। अतः ज्ञान से ही मोक्ष संभव है। सांख्य दर्शन में जहाँ ज्ञान का आशय 'विवेक ज्ञान' (पुरूष का प्रकृति से अपनी भिन्नता का ज्ञान) से है वहीं अद्वैत वेदांत में ज्ञान का आशय ब्रह्म ज्ञान या आत्म ज्ञान से है।

मोक्ष दो प्रकार का माना गया है- जीवन-मुक्ति और विदेह मुक्ति। इस संसार में इस शरीर को धारण किये हुए जो मोक्ष मिलता है, उसे जीवन-मुक्ति कहते हैं। जब जीवन्मुक्त शरीर का त्याग कर देता है तो उसे जिस मोक्ष की प्राप्ति होती है उसे विदेह-मुक्ति कहते हैं।

इस प्रकार देखते हैं कि जीवन के चार लक्ष्य (चार पुरुषार्थ) मानवीय प्रकृति के विभिन्न पक्षों का संकेत करते हैं- स्वाभाविक और संवेगात्मक, आर्थिक, बौद्धिक तथा नैतिक एवं आध्यात्मिक।

- नीति का उच्चतम आदर्श गीता के कर्मयोग के सिद्धान्त में पाया जाता है। आत्मसिद्धि के लिए कर्म-मार्ग ही सुलभ एवं श्रेयस्कर है।
- गांधी के अनुसार **अनासक्ति योग** गीता का मूल तत्व है, इसका अर्थ है- सांसारिक विषय सुखों से आसक्ति हटाकर आध्यात्मिक विकास की चेष्टा। गांधी द्वारा गीता पर लिखे गए भाष्य का नाम **'अनासक्ति योग'** है।

वर्णाश्रम धर्मः मनु के अनुसार, वर्णाश्रम धर्म विशिष्ट या विशेष धर्म है। इनका आधार मनुष्य की विशिष्ट योग्यता एवं पात्रता है।

वर्णः मनुष्य की प्रकृति (गुण, कर्म, स्वभाव) के आधार पर वर्ण का निर्धारण होता है। चार वर्ण हैं- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र।

आश्रमः मनुष्य के व्यक्तिगत संस्कार या जीवन के विकास क्रम में उसकी स्थिति के अनुसार आश्रम धर्म की व्यवस्था की गई है। आश्रम चार हैं - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास।

वर्ण एवं आश्रम के अनुसार किये गये कर्म ही वर्णाश्रम धर्म हैं। सम्पूर्ण सामाजिक कर्तव्यों के विवेचन का आधार- वर्णाश्रम धर्म ही है।

कौटिल्य

राजनीतिक विचारक, यथार्थवादी

कौटिल्य की प्रसिद्ध पुस्तक ''अर्थशास्त्र'' है। इसमें राजनीति एवं प्रशासन की विवेचना है।

राजा की स्थितिः ''प्रजा के सुख में ही राजा का सुख है, प्रजा के हित मे ही उसका हित है, राजा का अपना प्रिय अथवा सुख कुछ भी नहीं है, प्रत्युत प्रजा का प्रिय ही उसका प्रिय है।''

राजा के गुणः राजा उत्तम कुल का हो, दैवी बुद्धि एवं शक्ति सम्पन्न हो, सत्यवादी हो, साहसी, विनयशील, दूरदर्शी, उत्साही, वृद्धजनों एवं विद्वानों की मदद एवं सलाह लेने वाला, राजनीति, कूटनीति, विदेशनीति, वेदशास्त्र, युद्धविद्या एवं सैन्य संचालन में विशेष निपुणता हो, दुर्गुणों से मुक्त एवु सद्गुणों से युक्त हो, उद्यमशील एवं आदर्शवादी हो।

राजा/स्वामी के कार्य

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में राजा अर्थात् स्वामी के कार्य बताये है।

1. प्रजा की रक्षा करना।
2. राज्य क्षेत्र में शांति, सुरक्षा एवं सुव्यवस्था की स्थापना करना।
3. राज्य के बाह्य शत्रुओं से रक्षा करना।

4. प्रजा की सुख-समृद्धि हेतु कल्याणकारी कार्यों जैसे- उद्योग-धंधों एवं कृषि आदि की व्यवस्था करना है।

5. प्रजा के सर्वांगीण विकास हेतु शिक्षा, मनोरंजन, कला एवं साहित्य का विकास, सड़क एवं जलमार्ग आदि का विकास निर्धनों की सहायता आदि का कार्य करना चाहिए।

6. न्याय एवं दण्ड व्यवस्था करना।

सप्तांग सिद्धान्त- कौटिल्य ने अपनी पुस्तक **अर्थशास्त्र** के छठवें अधिकरण में राज्य की सात अंगों का वर्णन किया है। जिस सप्तांग सिद्धान्त कहते है।

ये हैं-

1. स्वामी - राजा
2. अमात्य - मंत्री /राज्य कर्मचारी
3. जनपद - प्रादेशिक क्षेत्र
4. दुर्ग - किला
5. राजकोष - खजाना
6. दण्ड - राज्य की रक्षा के लिए संगठित सेना
7. मित्र - मित्र राज्य

इन सातों अंगों या प्रकृतियों के सम्पन्न होने पर राज्य की शक्ति, श्रेष्ठता एवं समृद्धि बनी रहती है और वह राज्य अपनी जनता की सुरक्षा ठीक से कर पाता है। ये सातों अंग परस्पर अंतर्संबंधित हैं।

प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, दण्ड नीति, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, गुप्तचर व्यवस्था आदि के संबंध में कौटिल्य के विचार आज भी महत्त्वपूर्ण एवं प्रासंगिक है।

कौटिल्य की संप्रभुता संबंधी अवरधारणा को उनके सप्तांग-सिद्धांत से समझा जा सकता है। इस सिद्धांत के आधार पर संप्रभुता की निम्न विशेषताएँ हैं:

1. सप्तांग के एक अंग ***स्वामी*** को संप्रभु माना जाता है। स्वामी का प्रतीक राजा है।
2. संप्रभुता सार्वभौमिक व सार्वकालिक है,
3. संप्रभुता तर्कसंगत विधि से पूर्ण होती है।
4. राजा की निरंकुशता को अस्वीकार कर दिया गया है और राजा पर कुछ सीमाएँ लगाई गई हैं और कुछ कर्तव्य भी निर्धारित किए गए हैं।

राजा की संप्रभुता पर निर्बंधन :

1. राजा, राज्य का स्वामी नहीं बल्कि सेवक हैं।
2. राजा शक्ति का प्रयोग निर्बलों की सहायता व लोक-कल्याण के उद्देश्य से करेगा।
3. राजा का दंड-विधान विधि के अनुसार होना चाहिए, राजा की इच्छानुसार नहीं।
4. राजकोष का प्रयोग केवल राज्य हित में ही किया जाना चाहिए,

उदाहरण के लिए: राजा का दंड-विधान विधि के अनुसार होना चाहिए, राजा अपनी मनमानी नहीं कर सकता है।

चार्वाक

- **जड़वाद/भौतिकतावाद या भूत-तत्ववाद** : जीवन और जगत् के मूल तत्व के रूप में जड़ तत्व या भौतिक तत्व की सत्ता मानने वाला सिद्धान्त जड़वाद कहलाता है। चार्वाक भौतिकतावादी दार्शनिक हैं। यहाँ चेतन तत्वों की भी व्याख्या भौतिक तत्वों के आधार पर की गयी है।
- **लोकायत** : चार्वाक मत को लोकायत दर्शन भी कहा जाता है। लोक (संसार) में जनसाधारण में विस्तारित होने या इसी लोक को एकमात्र सत्य मानने के कारण यह लोकायत कहा गया है।
- **देहात्मवाद (शरीरात्मवाद)** : देह को ही आत्मा मानने अर्थात् दोनों में अभेद मानने के कारण चार्वाक देहात्मवादी हैं। चार्वाक मतानुसार चेतना से विशिष्ट शरीर ही आत्मा है।
- **भूत चैतन्यवाद** : भूत तत्व या जड़ तत्व से ही चेतना की उत्पत्ति मानने वाला सिद्धान्त भूत-चैतन्यवाद कहलाता है। इसके अनुसार शरीर से पृथक, स्वतंत्र नित्यात्मा का अस्तित्व नहीं है। चेतना शरीर का गुण है, आत्मा का नहीं।

चार्वाक की भौतिकतावादी तत्वमीमांसा उनके प्रत्यक्षवादी ज्ञानमीमांसा पर आधारित है। चूंकि चार्वाक प्रत्यक्ष को

NOTES

NOTES

एकमात्र प्रमाण के रूप में स्वीकार करते है इसलिए विश्व के मूल में उन्हीं तत्वों को स्वीकार करते है जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। प्रत्यक्ष द्वारा केवल जड़ द्रव्यों का ज्ञान हो सकता है। इसी कारण चार्वाक ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग-नरक, पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, आध्यात्मिक लक्ष्य मोक्ष, अदृष्ट आदि अतीन्द्रिय विषयों का खंडन करते हैं। जीवन और जगत् के मूल तत्व के रूप में जड़ तत्व की सत्ता को स्वीकार करने के कारण चार्वाक जड़वाद या भौतिकवाद (Materialism) का प्रतिपादन करते हैं। चूँकि जड़तत्व चार प्रकार के हैं। इसलिए इनका तत्वमीमांसीय सिद्धान्त बहुतत्ववादी जड़वाद (Pluralistic Materialism) कहलाता है।

चार्वाक की तत्वमीमांसा के दो पक्ष हैं :-

1. भावात्मक पक्ष : जड़-तत्वों एवं जगत की वास्तविक सत्ता को स्वीकार करते हैं।
2. निषेधात्मक पक्ष : आत्मा, ईश्वर आदि की आध्यात्मिक सत्ता का खंडन करते हैं।

नीति-विचार या आचार-मीमांसा (Ethics)

चार्वाक का नीति विचार उनके ज्ञानमीमांसीय एवं तत्वमीमांसीय विचारों से प्रभावित एवं संचालित है। चार्वाक नैतिकता के क्षेत्र में इहलौकिक, स्वार्थवादी, सुखवाद को प्रश्रय देते हैं। इनके अनुसार नैतिक दृष्टि से वही कर्म उचित है जिससे इस जीवन में अपने शारीरिक सुखों की प्राप्ति हो सके। वे भारतीय दर्शन में स्वीकृत चार पुरूषार्थों में से केवल अर्थ और काम को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार इनमें काम परम पुरूषार्थ है एवं अर्थ उसकी प्राप्ति का साधन है। चार्वाक के नीति विचार का प्रतिपादन नीचे दिये गये श्लोक से स्पष्ट होता है-

"यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुत्त:"

अर्थात् 'जब तक जीयो सुख से जीयो, ऋण लेकर भी घी पियो'। शरीर के विनाश के पश्चात् यहाँ पुन: आगमन नहीं है। आत्मा, स्वर्ग, कर्मनियम, पुनर्जन्म आदि की सत्ता को न मानने के कारण वे इस जीवन के अपने इन्द्रिय सुखों की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य निर्धारित करते हैं (इहलौकिक, निकृष्ट (स्थूल), स्वार्थवादी-सुखवादी)। चार्वाक मतानुसार परलोक के सुख की लालसा से इस जीवन के सुखों को त्याग करना मूर्खता का परिचायक है, क्योंकि कल मयूर मिलेगा इस आशा पर कोई भी व्यक्ति हाथ में आये कबूतर का परित्याग नहीं कर सकता।

सुखवाद के संदर्भ में चार्वाकों में दो संप्रदाय दिखाई देते हैं- 1. धूर्त चार्वाक और 2. सुशिक्षित चार्वाक। धूर्त चार्वाक व्यक्तिगत इन्द्रिय सुखों की ही प्राप्ति का प्रयास करते हैं, जबकि सुशिक्षित चार्वाक इन्द्रिय सुखों के साथ-साथ मूल्यों की भी बात स्वीकार करते हैं।

निकृष्ट चार्वाक की नीति-विचार की तुलना पाश्चात्य के ***एरिस्टिप्पस*** के स्वार्थमूलक सुखवाद से की जा सकती है। बाद के कुछ सुशिक्षित चार्वाकों ने *अर्थ* और *काम* के अतिरिक्त नैतिक मूल्य के रूप में *धर्म* को भी स्वीकार किया है। इस रूप में यहाँ कालान्तर में *त्रिवर्ग* को स्वीकार किया गया है।

आलोचना

1. चार्वाक के नीति विचारों में जीवन के उच्च आदर्शों एवं मूल्यों को महत्व एवं स्थान नहीं दिया गया है। यदि प्रत्येक व्यक्ति केवल अपने ही सुख-प्राप्ति की प्रयास करे तो फिर सामाजिक व्यवस्था खतरे में पड़ सकती है।
2. चार्वाक मत भौतिकतावाद को बढ़ावा देता है। इससे उपभोगतावादी प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। पर्यावरणीय दृष्टिकोण से इसे अनुकूल नहीं माना जा सकता।
3. निकृष्ट चार्वाक सुखों में गुणात्मक भेद नहीं मानते। वे शारीरिक सुखों को ही वरीयता देते हैं।

चार्वाक दर्शन की प्रासंगिकता

1. कल्पना लोक से आम जनता का ध्यान हटाकर इस जगत में सक्रिय होने की बात की गयी है।
2. लोक संदर्भों में प्रचलित ''जब तक साँस, तब तक आस'', ''जान है तो जहान है'' इत्यादि वाक्य भी एक संदर्भ में चार्वाक मत का समर्थन करते हैं।

3. जब चार्वाक ने ईश्वर, आत्मा इत्यादि की सत्ता का निषेध किया तो इन्हे मानने वालों ने और अधिक प्रबलता के साथ पक्ष में तर्क प्रस्तुत किये। परिणामस्वरूप भारतीय दर्शन विकसित, समृद्ध एवं व्यापक हुआ तथा उसमें समीक्षात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ। चार्वाक दर्शन ने भारतीय दर्शन को रूढ़ीवादी एवं अंधाविश्वासी होने से बचाया।

3. चार्वाक दर्शन भाग्यवादी और पलायनवादी होने से बचाता है।

महावीर, बुद्ध, कनफ्युशियस आदि के संबंध में नेहरू के वक्तव्य

'विश्व इतिहास की झलक' में ***पंडित नेहरू*** ने इस विषय में कहा है कि ईसा से पहले ही छठी सदी का जमाना एक बड़ा रोचक युग बन गया है। ऐसा मालूम होता है कि उस समय सारी दुनिया में विचारों की एक लहर उठ रही थी- लोगों के दिलों में जमाने की परिस्थिति से असंतोष और कोई बेहतर चीज प्राप्त करने की आशा व लालसा उमड़ रही थी। याद रखो कि ***धर्मों के संस्थापक हमेशा किसी बेहतर चीज की खोज में रहते थे*** और अपने *देश की जनता को सुधारने और ऊंचा उठाने और उसकी मुसीबतों को कम करने की कोशिश करते रहते थे।* ऐसे लोग हमेशा क्रांतिकारी रहे हैं और ***उस समय की बुराइयों पर हमला करने में जरा भी नहीं डरे हैं।*** जहाँ कहीं पुरानी परम्परा गलत रास्ते पर जाती हुई दिखाई दी या उसके कारण आगे की उन्नति रूकती हुयी मालूम पड़ी कि उन्होंने निडर होकर उस पर हमला किया और उसे मिटा दिया और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने ***उच्च जीवन का एक नमूना पेश किया*** जो असंख्य लोगों के लिए पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक आदर्श और प्रेरणा बन गया। भारत में ईसा से पहले की उस छठी सदी में बुद्ध और महावीर पैदा हुए, चीन में कनफ्युशियस और लाओ-त्से, ईरान में जरथुस्त्र या जोरास्टर और सामोस के यूनानी टापू में पाइथागोरस।

जैन

अनेकान्तवाद : भारतीय दार्शनिक परंपरा में जैन दर्शन नास्तिक एवं मूलतः अनिश्वरवादी दर्शन के रूप में जाना जाता है। यह जैन दर्शन बहुतत्ववादी और सापेक्षिक वस्तुवादी है जिसे अनेकान्तवाद कहते हैं। अनेकान्तवाद सत्ता की अनेकता का सिद्धान्त है। अनेकांतवाद के अनुसार विश्व में असंख्य भौतिक अणु एवं असंख्य जीव हैं तथा इनमें से प्रत्येक के अनेक धर्म हैं (अनन्त धर्मकं वस्तु, अनन्त धर्मात्मकमेव तत्वम्)। यह लोक चेतन जीव और भौतिक पदार्थों से परिपूर्ण है। ये चेतन जीव एवं भौतिक जड़ पदार्थ परस्पर भिन्न एवं परस्पर स्वतंत्र रूप से सत् हैं (बहुतत्ववादी वस्तुवाद)। अनेकान्तवाद की अभिव्यक्ति स्याद्वाद में होती है।

जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य सत् है। सत् वह है जिसमें उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य (नित्यता) ये तीनों धर्म होते हैं। (उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य संयुक्तं सत्)। वस्तु के किसी एक पक्ष, भाग या अंश को ही उसका सम्पूर्ण स्वरूप स्वीकार करना एकान्तवादी दृष्टि है। शंकर सत् को त्रिकाल में अबाधित के रूप में लेते हैं। बौद्ध अर्थक्रियाकारित्व को स्वीकार कर सत् को परिवर्तनशील मानते हैं। जैन दार्शनिक सत् के लक्षण में इन दोनों पक्षों को स्वीकार करते हैं। जैनों के अनुसार द्रव्य गुण की दृष्टि से नित्य होता है और पर्याय की दृष्टि से उत्पत्ति और विनाशशील भी होता है। द्रव्य एक गतिशील यथार्थता है जिसकी तीन विशेषताएँ हैं - उत्पत्ति, विनाश एवं नित्यता। इस प्रकार दृष्टि भेद से वस्तु में एकता और अनेकता, नित्यता और अनित्यता आदि रह सकते हैं।

यह व्याख्या अपेक्षाकृत अधिक संगत है, क्योंकि इससे परिवर्तन के साथ-साथ नित्यता की भी व्याख्या हो जाती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि जैन दार्शनिक एक ही दृष्टिकोण से परिवर्तन एवं नित्यता को सत् नहीं मानते हैं। जैन मतानुसार पर्याय के दृष्टिकोण से द्रव्य उत्पन्न एवं परिवर्तनशील है जबकि गुण के दृष्टिकोण से वह नित्य भी है। इस प्रकार जैन दर्शन में विभिन्न दृष्टिकोणों का एक समुचित समन्वय दिखाई देता है।

स्याद्वाद जैनियों के तत्वमीमांसीय सिद्धान्त अनेकान्तवाद की ज्ञानमीमांसीय अभिव्यक्ति है। यह जैनों के परामर्श (Judgment) सम्बन्धी मत को प्रकट करता है। इसके अनुसार हमारा समस्त ज्ञान सापेक्षतया सत्य होता है। इसका कारण है कि विश्व की अनेक वस्तुओं और इनमें से प्रत्येक वस्तु में विद्यमान अनेक धर्मों का ज्ञान साधारण मनुष्य किसी एक

NOTES

समय में नहीं कर सकता है। वस्तुओं और उनके अनन्त धर्मों का अपरोक्ष ज्ञान केवल केवली को ही केवल-ज्ञान द्वारा होता है। साधारण मनुष्य का ज्ञान आंशिक एवं अपूर्ण होता है। साधारण मनुष्य किसी वस्तु को किसी समय एक ही दृष्टि से देख सकता है। इसलिए वह वस्तु के केवल एक ही धर्म को जान सकता है। वस्तु के अनन्त धर्मों में से एक धर्म के ज्ञान को और उस ज्ञान की न्याय-वाक्य में अभिव्यक्ति को 'नय' कहा जाता है। नय वस्तु के एक धर्म का विधान करता है परन्तु वह वस्तु के अन्य धर्मों का निषेध नहीं करता। आंशिक ज्ञान होने से यह दुर्णय (जैसे यह सत् ही है) तो नहीं है किन्तु प्रमाण की कोटि में नहीं आता क्योंकि इसमें ज्ञान की आंशिकता का स्पष्ट रूप से प्रकाशन नहीं किया गया है। किसी वस्तु के लिए यह कथन कि यह स्यात् सत् है, 'प्रमाण' है क्योंकि इसमें ज्ञान की आंशिकता और सापेक्षता प्रकाशित होती है। चूँकि वस्तुओं में अनेक गुण होते हैं, अत: वस्तुओं को देखने के अनेक दृष्टिकोण भी हो सकते हैं। इनमें से प्रत्येक दृष्टिकोण अपने-अपने प्रसंग के अनुसार सत्य होता है, परन्तु कोई भी पूर्ण सत्य नहीं हो सकता। स्पष्ट है कि एक ही वस्तु के बारे में दो परस्पर विरोधी कथन सत्य हो सकते हैं, परन्तु दोनों की सत्यता अलग-अलग प्रसंगों पर निर्भर करेगी। प्रत्येक दृष्टिकोण में संदर्भानुसार सत्यता होती है, परन्तु वह निरपेक्ष सत्य एवं पूर्ण सत्य नहीं हो सकता। इसी सापेक्ष, आंशिक एवं अपूर्ण सत् को निर्दोष रूप में प्रस्तुत करने की प्रणाली स्यात्वाद है।

यहाँ स्यात् का तात्पर्य संशय, संभावना, अनिश्चितता या अज्ञेयता नहीं है। यहाँ 'स्यात्' शब्द ज्ञान की सापेक्षता का सूचक है। स्याद् शब्दयुक्त कथन एक विशेष दृष्टिकोण, परिस्थिति, देश और काल के संदर्भ में कथन की सत्यता को बताता है।

न्याय-वाक्यों के पूर्व 'स्यात्' पद का प्रयोग न करना ज्ञान की निरपेक्षता एवं एकान्तिकता का विधान करता है जो असत्य एवं भ्रामक है। जैन-दर्शन के अनुसार धार्मिक संघर्ष और दार्शनिक मतभेद इस निरपेक्ष एकान्तवाद के परिण ाम हैं।

जैन दार्शनिक अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए 'अन्धे एवं एक हाथी' की कहानी का उल्लेख करते हैं। कुछ अन्धे हाथी के आकार को जानना चाहते हैं। कोई हाथी का पैर, कोई पूँछ, कोई कान तथा कोई उसकी सूँढ़ पकड़ता है और फलत: वे तदनुरूप हाथी को क्रमश: स्तम्भ, रज्जू, सूप और अजगर के समान मानने लगते हैं। प्रत्येक अंधा सोचता है कि उसी का ज्ञान ठीक है। परन्तु जैसे ही उन्हें विश्वास दिलाया जाता है कि प्रत्येक ने हाथी के एक-एक अंग को ही स्पर्श किया है, उनका मतभेद दूर हो जाता है। दार्शनिकों के बीच भी मतभेद इसलिए होते हैं कि वे किसी विषय को भिन्न-भिन्न दृष्टियों से देखते हैं और उसे ही एकांतिक रूप से सत्य मानने लगते हैं।

स्पष्ट है कि स्याद्वाद, वस्तुत्व का सम्यक् रूप से प्रतिपादन करने वाली भाषा की निर्दोष प्रणाली है। भाषा एवं विचार को निर्दोष बनाने हेतु कथन से पूर्व स्यात् शब्द का प्रयोग आवश्यक है। इससे यह पता चलता है कि एक ही वस्तु को अनेक दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और संदर्भानुसार उसके बारे में भिन्न-भिन्न निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकते हैं।

जैन दर्शन की प्रासंगिकता या औचित्य

1. जैन प्रतिपादित स्याद्वाद विचार को दोषरहित बनाने में सहायक है। इससे यह पता चलता है कि हमारा ज्ञान दृष्टिकोण विशेष से सत्य है।
2. *विभिन्न धर्मों में विद्यमान हठवादिता, रूढ़िवादिता, कट्टरता इत्यादि का परित्याग कर उदारता को बढ़ाने में सहायक है। स्याद्वाद जीवन में* ***सहिष्णु*** *होने की प्रेरणा देता है।* इससे यह पता चलता है कि हमारा ज्ञान दृष्टिकोण विशेष से सत्य है। ऐसी स्थिति में हम दूसरों के विचारों के प्रति भी ***सहिष्णु*** होते हैं। *यह एक प्रकार से मानस अहिंसा है, क्योंकि स्याद्वाद को अपनाकर हम दूसरों की विचारों की सत्यता को भी संदर्भानुसार स्वीकार कर सकते हैं।*
3. स्याद्वाद ***समन्वयवाद को बढ़ावा*** देता है। यहाँ अन्य मतों का निषेध नहीं है बल्कि उनके मतों की भी संदर्भ के अनुरूप स्वीकृति है।
4. ***स्याद्वाद बहुधर्मी समाज की स्थापना में सहायक*** है। यह एक प्रकार से बहुसंस्कृतिवाद का भी समर्थन करता हुआ दिखता है।
5. धार्मिक मतभेदों एवं संघर्षों, दार्शनिक विवादों के वास्तविक स्वरूप के स्पष्टीकरण एवं निराकरण हेतु स्यादवाद एक उदार मार्ग प्रस्तुत करता है।
6. सामाजिक समरसता एवं धार्मिक सहिष्णुता की स्थापना में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।

7. स्याद्वाद एक मानस अहिंसा है। हम स्याद्वाद को अपनाकर दूसरे के विचारों को एक संदर्भ में स्वीकार कर सकते हैं।

8. जैनियों का यह कहना कि विचार का प्रभाव जीवन पर पड़ता है, मनोवैज्ञानिक रूप से सत्य है।

9. वर्तमान समय में पंचमहाव्रत की प्रासंगिकता है। वैश्विक स्तर पर बढ़ते आतंकवाद, हिंसा, वैमनस्य इत्यादि को नियंत्रित करने में जैनियों का अहिंसा संबंधी सिद्धान्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आर्थिक न्याय की स्थापना में अपरिग्रह की अवधारणा तथा विकृत भोगवादी प्रसार को नियंत्रित करने में ब्रह्मचर्य की स्थापना महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

10. जैन दर्शन प्रकृति-प्रेम की अवधारणा को बढ़ावा देता है। यहाँ वृक्षों को भी जीव के रूप में स्वीकार किया गया है। इस रूप में यहां पर्यावरणीय नीतिशास्त्र का समर्थन है।

11. जैन दर्शन जाति और वर्ग विशेष के अनुसार कर्तव्य पालन का उपदेश न देकर मनुष्य मात्र के लिए एक ही आचार-पद्धति का निर्देश करता है। इस रूप में यहाँ मानवतावादी प्रवृत्ति का समर्थन दिखायी देता है।

मानने से लाभ :

1. मानवीय स्वतंत्रता की रक्षा।
2. विविधता की व्याख्या हो जाती है।
3. धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा मिलता है।
4. सांप्रदायिक सौहार्द्र की स्थापना में मदद।
5. बहुसंस्कृतिवाद के अनुकूल।

हम यहाँ जैन दर्शन के स्याद्वाद को भी इस परिप्रेक्ष्य में देख सकते हैं। स्यादवाद के अनुसार विभिन्न धर्म परम सत् को जानने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं। इन्हें असत्य नहीं माना जा सकता, परन्तु इन्हें एक मात्र सत् या पूर्णत: सत् के रूप में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। विभिन्न धर्म वस्तुत: सत् को समझने के विभिन्न दृष्टिकोण हैं जिनमें आंशिक सत्यता अवश्य है। सभी दृष्टिकोणों को लेकर ही परम सत् के स्वरूप को स्पष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार यहाँ जैन दर्शन में भी धार्मिक बहुलतावाद का एक संदर्भ में समर्थन दिखाई देता है।

मोक्ष प्राप्ति के साधन या मार्ग

जैन दर्शन में **त्रिरत्न** अर्थात् सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र ये तीन मोक्ष प्राप्ति के मार्ग माने गये है।

- ***सम्यक् दर्शन (Right Faith) :*** जैन शास्त्रों में प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं तत्वों के प्रति श्रद्धा की भावना ही सम्यक दर्शन है।
- ***सम्यक् ज्ञान (Right Knowledge) :*** जैन दर्शन के सिद्धान्तों एवं तत्वों का यथार्थ ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है।
- ***सम्यक् चरित्र (Right Conduct) :*** यथार्थ ज्ञान के अनुसार आचरण करना अर्थात् सद्कर्मों का सम्पादन एवं दुष्कर्मों का बहिष्कार ही सम्यक् चरित्र कहलाता है। दूसरे शब्दों में, अहितकारी कर्मों का परित्याग और हितकारी कर्मों का आचरण ही सम्यक् चरित्र है। सम्यक् चरित्र के लिए पंच समितियों, तीन गुप्तियों, पंचमहाव्रतों, दस धर्मों आदि का पालन करना आवश्यक है।

प्रशासन में प्रासंगिकता

1. लोक सेवकों को संवैधानिक मूल्यों के प्रति आस्था रखनी चाहिए।
2. संवैधानिक मूल्यों, कानूनों, नियमों आदि का समुचित ज्ञान होना चाहिए।
3. अपने आचरण में उन मूल्यों का समावेश भी होना चाहिए।

NOTES

पंच महाव्रत

1.	सत्य (Truth)	असत्य का परित्याग
2.	अहिंसा (Non-violence)	मन, वचन, कर्म से किसी को चोट न पहुंचाना। यह जैन दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, आधारभूत नैतिक गुण है।
3.	अस्तेय (Non-stealing)	चोरी नहीं करना
4.	अपरिग्रह (Renunciation)	धन व सांसारिक सुख-सुविधा का संग्रह करने की प्रवृत्ति का न होना। आधुनिक युग की अनेक बुराईयों एवं विषमताओं का महत्वपूर्ण कारण अपरिग्रह की भावना का आभाव है।
5.	ब्रह्मचर्य (Celibacy)	काम-वासनाओं का परित्याग। इसका संदर्भ सांसारिक जीवन संयमित रूप से व्यतीत करने से है।

व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में नैतिकता को बढ़ावा देने हेतु पंचव्रतों का पालन आवश्यक है। सद्‌गुण नीतिशास्त्र का समर्थन है।

महत्व एवं प्रासंगिकता:

(i) जैन दर्शन ईश्वर आदि की सहायता के बिना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस रूप में वह मनुष्य को स्वावलम्बी बनने की प्रेरणा देता है।

(ii) जैनियों का यह कहना कि विचार का प्रभाव जीवन पर पड़ता है, मनोवैज्ञानिक रूप से सत्य है।

(iii) वर्तमान समय में पंचमहाव्रत की प्रासंगिकता है। वैश्विक स्तर पर बढ़ते आतंकवाद, हिंसा, वैमनस्य इत्यादि को नियंत्रित करने में जैनियों का अहिंसा संबंधी सिद्धान्त महत्वपूर्ण हो जाता है। आर्थिक न्याय की स्थापना में अपरिग्रह की अवधारणा तथा विकृत भोगवादी प्रसार को नियंत्रित करने में ब्रह्मचर्य की स्थापना महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

(iv) जैनियों का मोक्ष विचार भारतीय परम्परा में वर्णित विभिन्न मोक्ष विचारों में उत्कृष्ट विचारों में सम्मिलित किया जाता है। यहाँ मोक्ष की स्थिति में न केवल दु:खों की समाप्ति होती है बल्कि चेतना के साथ-साथ अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य एवं अनंत आनन्द की स्थिति बनी रहती है।

(v) जैन दर्शन प्रकृति-प्रेम की अवधारणा को बढ़ावा देता है। यहाँ वृक्षों को भी जीव के रूप में स्वीकार किया गया है।

(vi) जैन दर्शन जाति और वर्ग विशेष के अनुसार कर्तव्य पालन का उपदेश न देकर मनुष्य मात्र के लिए एक ही आचार-पद्धति का निर्देश करता है। इस रूप में यहाँ मानवतावादी प्रवृत्ति का समर्थन दिखायी देता है।

बौद्ध

प्रतीत्यसमुत्पाद बौद्ध-दर्शन का केन्द्रीय एवं आधारभूत सिद्धान्त है जो कारणता संबंधी इनके मत को प्रकट करता है। इसमें दुःख के कारण की खोज तथा उसके निदान की बात सम्मिलित हैं। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' दो शब्दों के योग से बना है- प्रतीत्य + समुत्पाद। यहाँ प्रतीत्य का आशय है- आश्रित होकर, अवलम्बित होकर (या किसी वस्तु के उपस्थित होने पर) जबकि समुत्पाद का तात्पर्य- उत्पत्ति या प्रादुर्भाव (किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति) से है। स्पष्ट है कि प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार कार्य की उत्पत्ति कारण की अपेक्षा से या कारण पर आश्रित होकर होती है। विश्व की प्रत्येक घटना सकारण है। जगत में कुछ भी अकारण घटित नहीं होता। कारण के होने पर ही कार्य होता है। कारण के नहीं होने पर कार्य भी नहीं होता है। इसे एक सूत्र के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए यह कहा गया है कि-

''इमस्मिं सति इदं भवति। इमस्मिं असति इदं न भवति।''

अर्थात् इसके होने पर (कारण) यह होता है (कार्य), इसके नहीं होने पर यह नहीं होता है। स्पष्ट है कि कार्य की उत्पत्ति स्वतंत्र रूप से या आकस्मिक रूप से नहीं होती।

आर्य सत्य: बौद्ध मतानुसार श्रेष्ठ, परम, चरम, अटल सत्य ही आर्य सत्य है। ये चार हैं- दुःख है, दुःख का कारण है, दुःख का निरोधा है, दुःख निरोध का मार्ग है। ये चार आर्य सत्य बुद्ध की शिक्षा के सार हैं।

प्रतीत्यसमुत्पाद: यह बौद्ध दर्शन का केन्द्रीय सापेक्ष कारणतावादी सिद्धान्त है जिसके अनुसार कार्य की उत्पत्ति कारण की अपेक्षा से, अवलंबित (निर्भर) होकर होती है। इसके 12 अंग हैं जो द्वितीय आर्य सत्य में वर्णित हैं।

अनित्यवाद: बौद्ध प्रतिपादित अनित्यवाद के अनुसार विश्व की सभी वस्तुएँ (चेतन जीव व जड़ पदार्थ) अनित्य हैं। अनित्यवाद की तार्किक परिणिती क्षणिकवाद में होती है।

क्षणिकवाद: बौद्ध दर्शन प्रतिपादित क्षणिकवाद के अनुसार विश्व की भौतिक व अभौतिक वस्तुएँ प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं। प्रतीत्यसमुत्पाद की तार्किक परिणिति ही क्षणिकवाद है।

अनात्मवाद: अनात्मवाद के अनुसार आत्मा नित्य व शाश्वत न होकर पंचस्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान) का परिवर्तनशील संघात मात्र है।

धर्मचक्र प्रवर्तन: बोधि (पूर्ण ज्ञान) की प्राप्ति के बाद बुद्ध द्वारा किया गया प्रथम धार्म उपदेश ही धार्मचक्र प्रवर्तन कहलाता है। यहीं से बौद्ध संघ का आरंभ माना जाता है।

निर्वाण: बौद्ध मतानुसार राग, द्वेष, मोह रूपी आसक्ति/अग्नि का क्षय हो जाना या दुःख का निरोध ही निर्वाण है। जीवन के चरम लक्ष्य के रूप में स्वीकृत निर्वाण की चर्चा तृतीय आर्य सत्य में है।

बोधिसत्व: बौद्ध दर्शन की महायान शाखा का नैतिक आदर्श बोधिसत्व है जो महाप्रज्ञा व करूणा से युक्त है। ये सदैव लोक कल्याण हेतु प्रयत्नशील हैं।

ब्रह्म विहार: बौद्ध दर्शन में चार ब्रह्म विहार माने गये हैं। ये हैं- मैत्री, करूणा, मुदिता एवं उपेक्षा। जीवन में नैतिकता एवं संवदेनशीलता को बढ़ाकर सहयोगपूर्ण वातावरण के निर्माण में ये सहायक हैं।

दस कुशल कर्म

शरीर के तीन कुकर्म: 1. प्राणी हत्या (हिंसा), 2. चोरी, 3. व्यभिचार

वाणी के चार कुकर्म: 1. झूठ बोलना, 2. चुगलखोरी करना, 3. कठोर बोलना, 4. बेकार बातचीत करना (बकवाद)

मन के तीन कुकर्म: 1. ईर्ष्या, 2. घृणा, 3. अज्ञान या झूठी धारणा

इनसे विरत होना ही कुशल कर्म है। प्रशासनिक अधिकारी को इन दस कुशल कर्मों से युक्त होना चाहिए।

1. व्यक्ति एवं सार्वजनिक संबंधों में नैतिकता को बढ़ावा देने के लिए दस कुशल कर्मों का पालन आवश्यक है।
2. अंतःकरण की आवाज पर ध्यान देने के लिए इन कुशल कर्मों का जीवन में अभ्यास होना आवश्यक है।
3. प्रशासनिक कार्यों का कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से निष्पादन हेतु उपरोक्त कुशल कर्मों से युक्त होना आवश्यक है।

NOTES

चार आर्य सत्य

1.	**दु:ख**	जीवन दु:खों से परिपूर्ण है। दु:खों का सांकेतिक नाम जरा-मरण है।
2.	**दु:ख समुदय**	◆ दु:ख का कारण है। दु:खों के कारणों को प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत में स्पष्ट किया गया है। **प्रतीत्यसमुत्पाद सिद्धांत (कारणता सिद्धांत)**- इसका शाब्दिक अर्थ है- यह है, तो वह होगा। संसार का कोई भी विषय बिना कारण नहीं। सभी का कुछ न कुछ कारण अवश्य होता है। ◆ **सापेक्ष कारणतावादी** - कार्य कारण सापेक्ष होता है। बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती। यह सिद्धांत प्रतीत्यसमुत्पाद पर आधारित है। **द्वादश निदान** इसी सें संबंधित है।
3.	**दु:ख निरोध**	◆ दु:खनिरोध को निर्वाण कहते हैं। ◆ निर्वाण जीवन का चरम लक्ष्य
4.	**दु:ख निरोध मार्ग**	अष्टांगिक मार्ग का वर्णन ***सारे लोगों के जीवन में दु:ख है परंतु दु:ख या कष्ट निवारण के लिए हमें गलत साधनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।***
5.	**पंचशील**	सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, मदिरा आदि का त्याग (पंचशिक्षापाद)

निर्वाण प्राप्ति का मार्ग

बौद्ध मत के अनुसार मोक्ष या निर्वाण प्राप्ति के लिए ***आर्य अष्टांगिक मार्ग*** का अनुसरण आवश्यक है। इस मार्ग के आठ चरण निम्नवत् हैं-

1.	**सम्यक् दृष्टि**	इसका अर्थ है उचित दृष्टि या यथार्थ दृष्टि। यह मिथ्या दृष्टि का विपरीत शब्द है। यहाँ सम्यक्दृष्टि का आशय चार आर्यसत्यों के यथार्थ ज्ञान से है।
2.	**सम्यक् संकल्प**	सम्यक् संकल्प सभी इन्द्रियजन्य सुखों में आसक्ति का परित्याग तथा जीवमात्र के प्रति प्रेम करने का दृढ़ संकल्प है।
3.	**सम्यक् वाक्**	इसका अर्थ है किसी के प्रति कठोर वचन न बोलना, झूठ न बोलना, चुगली न करना तथा निरर्थक वार्तालाप से बचना।
4.	**सम्यक् कर्मान्त**	हिंसा न करना, चोरी न करना, काम में मिथ्याचार से विरत रहना ही सम्यक् कर्मान्त है।
5.	**सम्यक् आजीव**	***ठीक (यथार्थ) आजीविका अर्थात् उचित साधनों से जीवनयापन करना ही सम्यक् आजीव है।*** *जैसे यदि प्रत्येक व्यक्ति मूल्यों से युक्त हो, अपनी आजीविका का प्रयास करे, दूसरों को शोषण न करे, कष्ट न पहुँचाये, अन्य लोगों और पर्यावरण पर हानिकारक प्रभाव न पड़े, जैसे रिश्वत, लूट, घोटाला, जमाखोरी, बंधुआ-मजदूरी, धोखा देकर कमाई करना, गरीबों के लिए आवंटित राशि को अपने हित में प्रयोग करना। आदि सम्यक् आजीव के विपरीत है। आर्थिक लाभ हेतु अनैतिक कार्यों का संपादन नहीं होना चाहिए।*
6.	**सम्यक् व्यायाम**	इसका अर्थ है - यथार्थ प्रयत्न। यह प्रयत्न दुष्प्रवृत्तियों के नियंत्रण एवं दमन तथा शुभ प्रवृत्तियों के उदय से संबंधित है।
7.	**सम्यक् स्मृति**	निरन्तर इस बात का स्मरण करना कि मानव शरीर अनित्य है, अपवित्र है। ऐसे स्मरण से आसक्ति दूर होती है और आध्यात्मिक उन्नति होती है।
8.	**सम्यक् समाधि**	कुशल चित्त की एकाग्रता ही समाधि है। यह आर्य आष्टांगिक मार्ग का अन्तिम सोपान है। यहाँ सभी प्रकार की चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है।

बौद्ध दर्शन की महायान शाखा में बोधिसत्व को नैतिक आदर्श के रूप में स्वीकार किया गया है। बोधिसत्व प्राणी-मात्र के कल्याण हेतु सदैव प्रयत्नशील रहते हैं। बोधिसत्व का मूल व्रत यह है कि जब तक संसार के सभी जीव निर्वाण प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक वे स्वयं निर्वाण का लाभ नहीं लेगें। इस प्रकार यहाँ व्यक्तिगत मुक्ति नहीं बल्कि सर्वमुक्ति की अवधारणा है। जब तक एक भी प्राणी बन्धन ग्रस्त है, तब तक वे प्रयासरत् रहेगें। उनकी यह धारणा महाकरूणा, मुदिता (प्रसन्नता) एवं मैत्री से प्रेरित है। निर्वाण की यह महायानी अवधारणा मानवतावादी है। इसमें *'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'* का आदर्श समाहित है।

बोधिसत्त्व की अवधारणा

बौद्ध धर्म-दर्शन में बोधिसत्त्व की अवधारणा का विशेष महत्व है। 'बोधिसत्त्व' बौद्ध दर्शन की महायान शाखा का नैतिक आदर्श है।

बोधिसत्त्व विवेक और सम्यक्ज्ञान से युक्त ऐसे प्राणी हैं जो लोक-कल्याण और लोक-मांगलिक चेतना के अभ्युदय के लिए सदैव आध्यात्मिक पथ पर अग्रसरित रहते हैं।

बोधिसत्त्व सभी दु:खी प्राणियों का उद्धार कर उन्हें निर्वाण प्राप्त कराने का प्रयास करते हैं। उसका लक्ष्य ***व्यक्तिगत कल्याण न होकर समष्टिगत कल्याण है।*** बोधिसत्व के नैतिक आदर्श में मानवतावाद, सार्वभौमवाद और लोकोपकार निहित है।

बोधिसत्व से संबंधित एक विशिष्ट सिद्धान्त *'परिवर्त्त'* का सिद्धान्त है। परिवर्त्त के सिद्धान्त का अर्थ है- नैतिक पुण्य को अन्यों के लाभों के लिए संचय करना। यह कर्मों के फल के आदान-प्रदान का मत है। इस सिद्धान्त के अनुसार बोधिसत्व अपने शुभ कर्मों के द्वारा दूसरों को दु:ख-मुक्त करते हैं और दु:खी व्यक्ति के पाप कर्मों के फल को स्वयं भोगते हैं। स्पष्ट है कि बोधिसत्व अपने को तब तक मुक्त नहीं मानते जब तक कि संसार के दु:खी व्यक्तियों से उनके दु:ख की निवृति न हो जाए।

बोधिसत्त्व का जीवन महाकरूणा और प्रज्ञा से संचालित होता है। वे लोककल्याण के लिए बार-बार जन्म लेते हैं। वे अपने पुण्यमय कर्मों के द्वारा दूसरों को दु:ख-मुक्त करते हैं तथा उनके पापमय कर्मों को स्वयं भोगते हैं। बोधिसत्त्व अपने जीवन में दान, शील, शान्ति, वीर्य, ध्यान और प्रज्ञा इन षट्पारमिताओं का अभ्यास करते हैं।

महत्त्व

- ***कमजोर वर्गों के प्रति समानुभूति, सहिष्णुता एवं करूणा के भाव को बढ़ाने में बोधिसत्त्व की अवधारणा मार्गदर्शन एवं उत्प्रेरक का कार्य करती है।***
- बोधिसत्त्व का आदर्श वर्तमान समाज की बुराइयों, दु:खों और असमानताओं को दूर करने में एक सशक्त समाधान बन सकता है। प्राणी मात्र के कल्याण के लिए अपना सब कुछ उत्सर्ग करने का आह्वान बौद्ध धर्म को एक मानववादी धर्म और विश्व धर्म के रूप में प्रतिष्ठित करता है।
- बोधिसत्व का आदर्श मानववाद, एकत्वबोध, मैत्री और नि:स्वार्थ समाजसेवा के भाव को प्रोत्साहित करता है।
- बौद्ध धर्म के आध्यात्मिक गुरु दलाई लामा का भी यह मानना है कि सभी धर्मों में मूल बातें समान हैं; जो अपने-अपने परिप्रेक्ष्य एवं संदर्भ के अनुसार परम सत् की ओर ले जाती है। ऐसी स्थिति में किसी एक धर्म विशेष को मान्यता देने के बजाय सभी धर्मों की सामान्य बातों पर जोर दिया जाना चाहिए।

मानने से लाभ :

1. मानवीय स्वतंत्रता की रक्षा।
2. विविधता की व्याख्या हो जाती है।
3. धार्मिक सहिष्णुता को बढ़ावा मिलता है।
4. सांप्रदायिक सौहार्द्र की स्थापना में मदद।
5. बहुसंस्कृतिवाद के अनुकूल।
6. लोक-कल्याण की भावना विस्तार

NOTES

अष्टांग योग

शरीर, इन्द्रियाँ और चित्त की शुद्धि और पवित्रता के लिये योग में आठ प्रकार के साधन बताये गये हैं। ये आठ **योगांग** कहलाते हैं।

1.	**यम**	योग का प्रथम अंग यम है। वाह्य एवं आंतरिक इन्द्रियों के संयम की क्रिया को यम कहते हैं। यम पाँच हैं- (i) अहिंसा, (ii) सत्य, (iii) अस्तेय, (iv) ब्रह्मचर्य और (v) अपरिग्रह। यम अवांछनीय कार्यों से साधक को निवृत्त कराते हैं।
2.	**नियम**	योग का दूसरा अंग नियम है। यह सदाचार का पालन है। ये पाँच हैं- ◆ **शौच :** शारीरिक एवं मानसिक शुद्धि। ◆ **संतोष :** उचित प्रयास से जितना प्राप्त हो, उससे संतुष्ट रहना। ◆ **तप :** भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी इत्यादि द्वंद्वों को सहन करना। ◆ **स्वाध्याय :** नियमपूर्वक शास्त्रों का अध्ययन करना। ◆ **ईश्वर प्राणीधान :** चित्त को भक्तिपूर्वक दृढ़ता से ईश्वर में लगाना और अपने सभी कर्मों को ईश्वर को समर्पित करना।
3.	**आसन**	स्थिरतापूर्वक सुख के साथ विशेष मुद्रा में बैठना ही आसन कहलाता है। आसन कई प्रकार के होते हैं। जैसे- पदमासन, व्रजासन आदि।
4.	**प्राणायाम**	श्वास-प्रश्वास की गति को नियंत्रित करके उनमें एक क्रम लाना ही प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम से हृदय और आन्तरिक अंगों को शक्ति मिलती है तथा चंचल मन नियंत्रण में आता है। इससे चित्त के मल धुल जाते हैं एवं विवेक ज्ञान जाग्रत होता है।
5.	**प्रत्याहार**	इन्द्रियों को उनके वाह्य विषयों से हटाकर उन्हें अंतर्मुखी करने का प्रयास ही प्रत्याहार है। ये उपरोक्त पाँच योग के **बहिरंग साधन** माने जाते हैं क्योंकि इनका लक्ष्य चित्त को भौतिक वाह्य पदार्थों की ओर जाने से रोकना है। ये बहिरंग साधन समाधि के लिए पृष्ठभूमि तैयार करते हैं।
6.	**धारणा**	चित्त को अभीष्ट विषय पर केन्द्रित करना ही धारणा है।
7.	**ध्यान**	अभीष्ट विषय का निरन्तर ध्यान
8.	**समाधि**	यह अष्टांग योग का आठवां एवं अन्तिम अंग है। इसका अर्थ है- ध्येय वस्तु में चित्त की विक्षेपरहित एकाग्रता। समाधि में ध्याता, ध्यान और ध्येय की की त्रिपुटी में ध्येय ही शेष रह जाता है। ध्याता और ध्यान ध्येयाकार हो जाते हैं।

योग के माध्यम से व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य होकर अपनी क्षमताओं का जनहित में समुचित प्रयोग कर सकता है। यम की अवधारणा व्यक्ति को नैतिक पथ पर आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

शंकर

शंकर ने मानवीय एकता बल दिया है। इनके अनुसार - सभी जीव मूलतः ब्रह्म ही हैं।

मनुष्य की स्वार्थपरकता, संकीर्णता एवं अहम् भावना (अहंकार) के कारण विवाद, संघर्ष, युद्ध आदि की स्थिति उत्पन्न होती है।

वेदांत मनुष्य के जीवन मूल्यों को जागृत करने की बात करता है। यह मानता है कि मनुष्य के भीतर एक महान आध्यात्मिक शक्ति निहित है और उसके माध्यम से ही सामाजिक एकता की प्राप्ति की जा सकती है। इसीलिए वे अहंकार की क्षुद्र मनोवृत्ति के त्याग की बात करते हैं एवं सार्वभौमिक प्रेम का संदेश देते हैं। सभी जीवों में एक ही आत्मा का वास है।

नैतिक दृष्टिकोण: शंकर का अद्वैतवाद मानव को नैतिक रूप से एकबद्ध करने का प्रयास करता है। इसके अनुसार

विभिन्न जीव वस्तुत: ब्रह्म ही हैं। यदि इस अवधारणा का प्रसार किया जाए तो फिर मनुष्यों के बीच विद्यमान परस्पर वैमनस्य, घृणा, अत्याचार, रंगभेद, जातिभेद, साम्प्रदायिकता इत्यादि नकारात्मक अवधारणाओं पर प्रहार होता है। इससे मानव मात्र के मध्य एकता का संदेश प्रसारित होता है। इसमें मानव मात्र में किसी प्रकार का भेद नहीं किया गया है। शंकर के दर्शन में सर्वोच्च स्तर पर ब्रह्म की सत्ता स्वीकार की गई है जो कि नपुंसक लिंग में है। इस प्रकार यहाँ एक रूप में चरम स्तर पर लिंग समानता की भी स्थापना की गयी है।

सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्व : शंकर ने भारत को सांस्कृतिक एवं भौगोलिक रूप से भी एकबद्ध करने का प्रयास किया। उन्होंने भारत की चारों दिशाओं में चार मठों की स्थापना की। ये मठ भारत की सांस्कृतिक एकता के प्रतीक हैं। ये हैं-

1.	**उत्तर**	➪	ज्योर्तिपीठ	बद्रीनाथ
2.	**दक्षिण**	➪	श्रृंगेरी पीठ	मैसूर
3.	**पूर्व**	➪	गोवर्धन पीठ	जगन्नाथ पुरी
4.	**पश्चिम**	➪	शारदा पीठ या द्वारका पीठ	द्वारिका पुरी

गोस्वामी तुलसीदास

भक्त शिरोमणि तुलसीदास उन गिने-चुने महाकवियों में से एक हैं जिन्होंने अपनी प्रखर प्रतिभा से व्यक्ति, समाज और राष्ट्र को एक नूतन दिशा प्रदान की। वह बहुमुखी प्रतिभा वाले महात्मा, कवि, साधक, युग-द्रष्टा, युग-स्त्रष्टा, लोकनायक और क्रांतिदर्शी थे।

तुलसीदास के बचपन का नाम रामबोला था। अनाथ रामबोला को स्वामी नरहरिदास जी ने अपनी शरण में लिया और शेष सनातन जी ने पढ़ा-लिखाकर विद्वान् बना दिया। राजा टोडरमल, रहीम और मान सिंह तुलसीदास के अनन्य मित्र थे।

तुलसीदास जी का विवाह दीनबंधु पाठक की पुत्री रत्नावली से हुआ था, जो स्वयं एक विदुषी महिला थी। इसी से फटकार खाकर तुलसी वैरागी हो गए थे। हुआ यह कि एक बार रत्नावली अपने मायके चली गई थी। अत्यधिक आसक्ति के कारण तुलसीदास भी उसके पीछे-पीछे बरसात की घोर अंधेरी रात में ससुराल पहुंच गए। घर का दरवाजा बंद था। किसी तरह से दीवार से चढ़कर तुलसी ने रत्नावली को जगाया। रत्नावली ने तुलसीदास की मन:स्थिति देखकर तिरस्कृत भाव से व्यंगात्मक शब्दों में कहा कि-

"लाज न आवत आपको, दौरे आयहु साथ।
धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहहुं मैं नाथ।।
अस्थि चर्ममय देह मम, तामे ऐसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम में कबहु न हो भव भीति।।"

रागासक्त प्रेमी की भावना औंधे मुंह जमीन पर गिरी। आसक्ति को गहरा धक्का लगा। तुलसी की सोई आत्मा जाग उठी। उन्होंने विरक्त होकर घर-बार छोड़ दिया। भारत के सभी प्रसिद्ध तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए वे चित्रकूट में रामभक्ति में लीन हो गए। तुलसी ने अयोध्या में चोरा नामक स्थान पर 'रामचरितमानस' की रचना आरंभ की और उसे काशी में आकर पूर्ण किया।

तुलसीदास के द्वारा रचित ग्रंथ

बड़े ग्रंथ-'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'कवितावली', 'गीतावली', 'कृष्ण-गीतावली' और 'दोहावली'।

छोटे ग्रंथ- 'जानकीमंगल', 'पार्वतीमंगल', 'रामललानहछू', 'रामज्ञा-प्रश्न', 'बरवै-रामायण', 'हनुमान बाहुक' और 'वैराग्य-संदीपनी'।

गीति काव्य- कवितावली, गीतावली एवं विनय-पत्रिका नामक तीन ग्रंथ गीति काव्य कहलाते हैं। इन तीनों गीति काव्यों का निर्माण ब्रज भाषा में हुआ है।

रामचरितमानस

'रामचरितमानस' अवधी भाषा में रचा गया महाकाव्य है। इसकी रचना गोस्वामी तुलसीदास ने सोलहवीं सदी में की थी। इसमें भगवान राम के जीवन का वर्णन है। यह महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत के महाकाव्य 'रामायण' पर आधारित है।

'रामचरितमानस' में सामाजिक आदर्शों को बड़े ही अनूठे ढंग से व्यक्त किया गया है। इसमें गुरु-शिष्य, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन इत्यादि के आदर्शों को इस तरह से प्रस्तुत किया गया है कि ये आज भी भारतीय समाज के प्रेरणा-स्रोत बने हुए हैं।

रामचरितमानस तुलसीदास की सर्वाधिक प्रचलित रचना है। तुलसीदास ने इस महाकाव्य की रचना अवधी भाषा में, दोहा-चौपाई शैली में सात काण्डो में की है।

1. **बालकाण्ड :** 'रामचरित्रमानस' की भूमिका, राम और उनके भाईयों का जन्म, तारका वध, राम विवाह का प्रसंग आदि है।
2. **अयोध्याकाण्ड :** इसमें राम का वन-गमन, भरत द्वारा राम को मनाने के लिए चित्रकूट-गमन, राम-भरत मिलाप, भरत द्वारा राम की पादकाएँ (राज-चिह्न के रूप में) लेकर अयोध्या लौटना आदि का वर्णन है।
3. **अरण्यकाण्ड :** राम-लक्ष्मण-सीता का दण्डकारण्य में निवास, ऋषियों की प्रार्थना से राक्षसों का वध, पंचवटी में निवास, रावण द्वारा छल से सीता हरण, रावण द्वारा जटायू की हत्या आदि का वर्णन है।
4. **किष्किन्धाकाण्ड :** राम और सुग्रीव की मैत्री, राम द्वारा बालिका वध, सीता की खोज हेतु वानर सेनाओं का विभिन्न दिशाओं में प्रेषण, हनुमान द्वारा सागर पार करना आदि का वर्णन है।
5. **सुन्दरकाण्ड :** हनुमान का लंका में प्रवेश, अशोक-वन में सीता से भेंट एवं की दी हुई अंगूठी देना, हनुमान का बंदी होकर रावण की सभा में जाना, लंका-दहन, हनुमान का प्रत्यावर्तन (वापस लौटना), राम को हनुमान द्वारा सीता की चूड़ामणि दिया जाना आदि का वर्णन है।
6. **लंकाकाण्ड :** नल-नील द्वारा समुद्र पर सेतु बनाना, वानर सेना का समुद्र पार कर लंका पहुंचना, अंगद को शांतिदूत बनाकर रावण की सभा में भेजना। राम और रावण की सेना में युद्ध, राम द्वारा रावण एवं कुंभकरण का वध, राम का सीता से पुर्नमिलन आदि घटनाओं का वर्णन।
7. **उत्तरकाण्ड :** राम का सीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या आगमन, भरत-मिलाप, अयोध्या में राम राज्याभिषेक, संत-असंत निरूपण, काकभुशुण्डि-गरूण संवाद आदि का वर्णन है।

'रामचरित्रमानस' में तत्कालिन समाज को विभिन्न बुराईयों से मुक्त करने और उसमें श्रेष्ठ गुणों को विकसित करने का प्रयास दिखाई देता है। इस ग्रंथ ने जनमानस के जीवन में मूल्य एवं आदर्शों की शिक्षा देकर समाज को सुधारने में प्रेरणा का काम किया है।

रामचरित्रमानस का पठन करने समय पाठक और श्रोता दोनों को संगीत एवं भजन से प्राप्त होने वाली आत्मिक शांति का आनंद प्राप्त होता है। यह मनुष्यों में सद्‌गुणों के विकास में सहायक है।

सामाजिक चेतना

- उन्होनें अपनी रचनाओं से लोकचेतना को जागृत किया और खण्डित समाज को एकताबद्ध करने का स्तुत्य करने का प्रयास किया।
- पितृ भक्ति, पुत्र-प्रेम, स्वामी भक्ति, प्रजावात्सल्यता, भातृ स्नेह, इत्यादि मानवीय मूल्य।
- सत्य, सदाचार, कर्तव्यनिष्ठा।
- अन्याय पर अंततः न्याय की विजय का निरूपण।

तुलसी का समस्त काव्य मर्यादा और दिव्य चेष्टाओं से परिपूर्ण है। उनके काव्य में ओज, माधुर्य और प्रसाद- तीनों गुणों का समावेश है। उन्होंने अपने काव्य में अपने समय की प्रचलित विभिन्न शैलियों को अपनाया है। उन्होंने कवित्त, सवैया, छप्पय, सोरठा, बरवै, दोहा, चौपाई, पद आदि विभिन्न छंदों का प्रयोग विभिन्न रचनाओं में किया है।

तुलसीदास के काव्य में करुण, वीर, रौद्र, शांत और अद्‌भुत आदि रसों का सुंदर परिपाक हुआ है। तुलसी के काव्य में तयुगीन प्रचलित विभिन्न अलंकारों उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत, व्यतिरेक आदि का सहज और स्वाभाविक रूप में प्रयोग हुआ है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि तुलसी कला के द्वारा उपकृत नहीं हुए बल्कि कला उनसे उपकृत हुई-

"कविता करके तुलसी न लसे,
कविता तुलसी की कला।"

रामचरितमानस की प्रमुख विशेषताएं :

1. यह एक श्रेष्ठ प्रबन्ध काव्य है, जिसमें महान कथानक, आदर्शपूर्ण एवं उद्देश्यपूर्ण जीवन का भाव निहित है।
2. इसमें उत्कृष्ट कोटि की भाव योजना एवं रस योजना विद्यमान है।
3. इसमें मानव, दानव, देवता, पशु, पक्षी आदि पात्र दिखाई देते हैं।
4. यहाँ असत्य पर सत्य की, बुराई पर अच्छाई की विजय को चित्रित किया गया है।

तुलसीदास के आराध्य देव मर्यादा पुरुषोत्तम राम हैं। वे लोकनायक और लोकरक्षक हैं। वे परब्रह्म होते हुए भी मनुज (मानव) हैं। राम ब्रह्म होते हुए भी अवतार ग्रहण करके मानवीय लीला में प्रवृत्त हैं। उनके राम आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श राजा, आदर्श शत्रु, आदर्श शिष्य और आदर्श मानव हैं। तुलसी के राम पतित-पावन हैं, ज्ञान-गुण मन्दिर हैं, करूणा-निधान हैं, शरणागत-वत्सल हैं, अमंगलहारी हैं, निर्गुण और सगुण, निराकार एवं साकार दोनों रूपों में हैं। तुलसीदास ने राम-नाम को कल्पतरू कहकर कल्याणकारी बताया है। इन्हीं दिव्य एवं उत्कृष्ट गुणों से युक्त होने के कारण उनका ग्रन्थ ''रामचरितमानस'' भारतीय जन-मानस में धर्म ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित है।

तुलसीदास जी के काव्य में करूणा, वीर, रौद्र, शांत और अद्‌भुत आदि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। उनके काव्यों में तत्कालीन समाज में प्रचलित विभिन्न अलंकारों, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त, संदेह, प्रतीप, व्यतिरेक आदि का सहज एवं स्वाभाविक रूप से प्रयोग किया गया है।

भाव, भाषा, शैली, अलंकार, रस, पदलालित्य, कथा और वस्तु-विन्यास उनकी परिपक्वता एवं श्रेष्ठता को दर्शाता है। उनकी रचनाओं में मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में प्रचलित सभी काव्यों रूपों का प्रयोग हुआ है। उन्होंने वीरगाथा काव्य की छप्पय-पद्धति, विद्यापति और सूरदास की गीत-पद्धति, गंग आदि कवियों की कवित्त-सवैया पद्धति, रहीम के समान दोहे और बरवै, जायसी की तरह चौपाई-दोहे के क्रम में प्रबंध-काव्य रचे। पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, ''हिंदी काव्य की सब प्रकार की रचना-शैली के ऊपर गोस्वामी जी ने अपना ऊँचा आसन प्रतिष्ठित किया है। यह उच्चता और किसी को प्राप्त नहीं।''

आज भी तुलसीदास की रचनाएँ जीवन में अच्छे कर्मों को करते हुए सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देती हैं।

''कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।
जो जस करहि सो तस फल चाखा॥''

सूरदास

हिन्दी साहित्य में कृष्णभक्त कवियों में सूरदास श्रेष्ठ एवं अग्रगण्य हैं। सूरदास ने कृष्ण की बाल-लीला और राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला का सुन्दर चित्रण किया है।

बाल-लीला: सूर का बाल लीला वर्णन अपनी मनोवैज्ञानिकता एवं स्वाभाविकता में अद्वितीय है। यहाँ कृष्ण के बालक रूप का मार्मिक एवं जीवन्त वर्णन किया गया है। बालक का हठ, बालक का निर्दोष चरित्र, वाक् पटुता, माता के ममत्व का अद्‌भुत वर्णन है। मैया मोरी मैं नहिं माखन खायो- में इनकी मार्मिक अभिव्यक्ति होती है।

NOTES

सूरदास की प्रमुख रचनाएं :

भ्रमर गीत प्रसंग : यह भाव और रस से युक्त है। इसमें कृष्ण के मथुरा प्रवास से उत्पन्न स्थिति में गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। इसमें सहृदयता, प्रेम, व्यंग, कल्पना एवं मधुरता का समावेश है।

सूरदास वात्सल्य और श्रृंगार के कवि हैं।

कबीरदास

- भक्तिकालीन सन्त-काव्यधारा के प्रमुख कवि, अपने युग में नये विचारों के वाहक, सामाजिक चेतना को जागृत करने वाले अग्रणी चिंतक तथा रचनाकार।
- सरलता, सत्यता, व्यवहारिकता एवं स्पष्टवादिता के लिए प्रसिद्ध।
- कबीर का काव्य तत्कालीन सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता है। उन्होनें हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक पाखंड एवं आडम्बर, धार्मिक अंधविश्वासों, सामाजिक कुरीतियों (जाति-पाँति का भेदभाव, छुआछुत आदि) एवं रूढ़िवादिताओं का विरोध किया। सामाजिक समानता, नारी सम्मान, प्रेम एवं सत्संगति के महत्व पर बल दिया।
- निर्गुण भक्ति मार्ग के अनुयायी। उनके निर्गुण भक्ति काव्य में प्रेम के सहारे कर्मकाण्डों की दुरूहताओं का निराकरण किया गया है।
- **कबीर की भक्ति में** परमात्मा की एकता, प्रेम एवं माधुर्य-भाव, नाम स्मरण, गुरू की महत्ता, सत्संगति, अंहकार त्याग, आचरण की शुद्धता और प्रपत्ति-भाव का अनुगमन सम्मिलित है। कबीर की भक्ति में सभी मनुष्यों के लिए समानता की भावना है। यहाँ जाति, धर्म एवं वर्ण के आधार पर भेद एवं आडम्बर का कोई स्थान नहीं है।

जब तक मनुष्य के हृदय में अंहकार निवास करता है तब तक वह सच्ची भक्ति का उपलाभ प्राप्त नहीं कर सकता। कबीर का स्पष्ट मंतव्य है- *''जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहि।*
प्रेम गलि अति साँकरी, ता में दो न समाहि।''

प्रेम में एकत्व/अद्वैत भाव को इंगित करते हुए कबीर कहते हैं कि-

''लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

कबीर की भक्ति में प्रेम रस का निरन्तर प्रवाह विद्यमान है। उनका कथन है-

''हरि रस पीया जानिये, कबहुँ न जाय खुमार।
मैमंता घूमत फिरै, नाहिंन तन की सार।।''

- **कबीर के रहस्यवाद में** ब्रह्म-जिज्ञासा, अपरोक्ष अनुभूति, ब्रह्म मिलन का एकत्व भाव एवं *'राम कबीरा एक भए हैं कोउ न सके पछाणि'* का भाव निहित है।

कबीर हिंदी भाषा के भक्ति काल के प्रमुख कवि और समाज सुधारक थे। उनकी मुख्य भाषा सधुक्कड़ी थी लेकिन इनके दोहों और पदों में हिंदी भाषा की सभी मुख्य बोलियों की झलक दिखलाई पड़ती है। इनकी रचनाओं में ब्रज, राजस्थानी, पंजाबी, अवधी, हरयाणवी और हिंदी खड़ी बोली की प्रचुरता थी। कबीर भक्तिकाल की निर्गुण भक्ति धारा से प्रभावित थे। कबीर का प्रभाव हिन्दू, इस्लाम और सिख तीनों धर्मों में मिलता हैं।

सन्त कबीर की रचनाएँ:

- कबीर की समस्त रचनाओं को दो प्रकार के संग्रहों में विभक्त किया गया है- **बानी और बीजक।** बानी के तीन भाग किये गये हैं- **साखी, सबद और रमैनी।**
- कबीर ने अपनी रचनाओं में गुरू-महिमा, सन्त-महिमा, सत्पुरूष-निरूपण, भक्तों की महिमा, सत्य-वचन, माया का निरूपण, नाम-सुमरिन की महिमा, सत्संगति का लाभ, कुसंगति की हानियाँ, साधु की महिमा, संसार की असारता, ईश-विनय आदि पर ही अधिक कहा है। उनका समस्त साहित्य धर्म, समाज, आचरण, नैतिकता तथा व्यवहार-संबंधी विषयों का भण्डार है।

NOTES

कबीर के साखी का अर्थ एवं महत्व:

'साखी' शब्द संस्कृत के 'साक्षी' शब्द का अपभ्रंश रूप है। 'साक्षी' का अर्थ है-गवाही, अर्थात् जो कुछ स्वयं देखा है या अनुभव किया है उसे सच्चाई या ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करना ही 'साक्षी' कहलाता है। 'साखी' का अर्थ महात्माओं एवं महापुरूषों के आप्त वचन से हैं। साखियाँ मानव मात्र को संसार के बन्धनों से मुक्त करके आवागमन के चक्कर से छुड़ाने वाली हैं। साखियाँ मानव को सदाचार एवं शुद्धाचरण की शिक्षा देती हैं। कबीर की साखियाँ वैयक्तिक अनुभूतियों का भण्डार है। जिसमें ज्ञान और भक्ति, नैतिकता और व्यावहारिकता, दार्शनिकता और भावुकता, आध्यात्मिकता और लौकिकता का समुच्चय है।

प्रासंगिकता :

सत्संगति: कबीर कहते हैं कि अज्ञानी एवं मूर्खों की संगति लोहे से समान भार रूप है जो सात्विकता और सदाचार के मार्ग पर नहीं ले जा सकती। हमें सज्जनों की संगति करनी चाहिए जैसे- स्वाति नक्षत्र की एक बूँद केले में गिरने पर कपूर बन जाती है और सीप में गिरकर मोती बन जाती है, परन्तु साँप के मुंह में गिरने पर हलाहल विष बनती है, वैसे ही सत्संगति से कोई व्यक्ति अच्छा और नेक बनता है तथा कुसंगति से पापी, दुराचारी एवं दुष्ट बनता है। कबीर का कहना हैं कि-

मूरखि संग न कीजिए, लोहा जलि न तिराइ।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूँद तिहुँ भाइ।।

उचित वाणी : आज सामाजिक जीवन में कटु वचन के माध्यम से परस्पर प्रहार की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इससे वैमनस्य एवं संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो रही है। ऐसी स्थिति में कबीर का यह दोहा प्रासंगिक है कि-

''ऐसी वाणी बोलिए, मन का आपा खोए,
औरन को शीतल करे, आपहुं शीतल होए।।''

क्षमा का महत्व : कबीर सामाजिक जीवन में क्षमा एवं परार्थ की भावना को विस्तारित करते हुए कहते हैं कि-

''जो तोको काँटा बुवै, ताहि बुवै तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरशूल।।''

आत्म-समीक्षा: कबीर जीवन में दूसरी की बुराईयों को ढूंढने और आलोचना करने की बजाय आत्म-मूल्यांकन पर बल देते हैं। उनका कथन है-

''बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय,
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।''

उपभोक्तावादी, स्वार्थवादी, संग्रहणवादी प्रवृत्ति पर प्रहार-

''साईं इतना दीजिये, जामे कुटुंब समाये ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाए ।।''

वर्ण, जाति, धर्म, नारी आदि के संदर्भ में प्रचलित नकारात्मक मनोवृत्ति पर व्यंगात्मक तरीके से प्रभावोत्पादक प्रहार करते हुए जीवन को सरल एवं व्यावहारिक बनाने का प्रयास

- जातियों, धर्मों, वर्गों, आदि में विभाजित समाज की संकटग्रस्तता के समय कबीर का साहित्य प्रासंगिक हो जाता है।

गुरुनानक देव

गुरु नानक देव सिख धर्म के संस्थापक और सिखों के पहले गुरु (आदि गुरू) थे। इनके अनुयायी इन्हें 'गुरू नानक', 'बाबा नानक' तथा नानकशाह नामों से संबोधित करते हैं।

गुरुनानक देव जी के जन्म दिवस को गुरुनानक जयंती या प्रकाश पर्व या गुरु पर्व के रूप में मनाया जाता है। नानक जी का जन्म पाकिस्तान (पंजाब) में रावी नदी के किनारे स्थित तलवंडी नामक गांव में हुआ था, जिसे आजकल 'ननकाना साहिब' कहते हैं जो वर्तमान में पाकिस्तान में स्थित है।

- **रचनाएँ :** जपु जी साहिब, 'तखारी' राग के बारहमाहाँ (बारहमासा)
- **सरबत दा भला**- सभी मनुष्यों के हित में काम करने की बात
- **एक ओंकार** - एक ईश्वर, एक सत्य, सतनाम पर बल
- महान संत, उदार चिंतक, मानव समाज के पथ प्रदर्शक, धर्म-सुधारक, समाज-सुधारक, कवि, संगीतज्ञ
- अंधविश्वास एवं पाखण्ड को त्यागकर जीवन में सत्पथ पर चलने का उद्देश्य छूआछूत एवं धार्मिक भेदभाव का विरोध सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ जागरुक करते थे।
- अपने जीवन के तीन मूल सिद्धांत **नाम जपो (नाम जपें), कीरत करो (मेहनत करें)** और **वंड छको** (साझा करके या बांटकर खायें) बताये हैं। यही उनकी शिक्षा का सार है।
- मानवता की एकता एवं सेवा तथा सच्चे प्रेम के प्रबल समर्थक
- वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे।
- 'श्री गुरु-ग्रन्थ साहिब' में उनकी रचनाएँ 'महला 1' के नाम से संकलित हैं।

गुरूनानक देव जी ने अपने अनुयायियों को जीवन के दस सिद्धांत दिए थे। यह सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।

1. ईश्वर एक है।
2. सदैव एक ही ईश्वर की उपासना करो।
3. जगत का कर्ता सब जगह और सब प्राणी मात्र में मौजूद है।
4. सर्वशक्तिमान ईश्वर की भक्ति करने वालों को किसी का भय नहीं रहता।
5. ईमानदारी से मेहनत करके उदरपूर्ति करनी चाहिए।
6. बुरा कार्य करने के बारे में न सोचें और न किसी को सताएँ।
7. सदा प्रसन्न रहना चाहिए। ईश्वर से सदा अपने को क्षमाशीलता माँगनी चाहिए।
8. मेहनत और ईमानदारी से कमाई करके उसमें से जरूरतमंद को भी कुछ देना चाहिए।
9. सभी स्त्री और पुरुष बराबर हैं।
10. भोजन शरीर को जिंदा रखने के लिए जरूरी है पर लोभ-लालच व संग्रहवृत्ति बुरी है।
11. शोषणमुक्त समाज के निर्माण के लिए गुरुनानक देव की शिक्षाएं अपनानी होंगी।
12. उनके अनुसार एक परमात्मा ही सर्वशक्तिमान सत्य है। जिसे उन्होंने ओंकार का नाम दिया।
13. गुरुनानक ने सदैव दुखियों और बेबस लोगों का साथ दिया।
14. उनके दर्शन में मानव मात्र के प्रति प्रेम और करूणा दिखाई देती है। समाज के कमजोर एवं असहाय लोगों के प्रति प्रेम और सेवा का भाव जागृत करने में उनके विचार प्रासंगिक हैं।

उन्होंने सिख समाज में लंगर की परम्परा का आरम्भ किया, जो आज पूरे विश्व में भाईचारे की एक अनूठी

सामाजिक परम्परा बन गई है। उन्होंने ऊँच-नीच का विरोध किया। आज भी उनके प्रवचनों और शब्दों का कीर्तन गम्भीरता से सुना जाता है। आज समाज में साम्प्रदायिक और जातीय कटुता के साथ नफरत और हिंसा बढ़ रही है। ऐसी स्थिति में उनके दर्शन और शिक्षा की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। समाज में सौहार्द्र एवं सहयोग की स्थापना तथा शोषणमुक्त और संवेदनशील समाज के निर्माण में गुरूनानक देव के विचार अनुकरणीय है।

NOTES

राजा राममोहन राय (1772-1833)

भारतीय पुनर्जागरण के पिता, मानवतावाद के दूत, आधुनिक भारत के निर्माता, महिलाओं के अधिकारों के योद्धा, सामाजिक एवं राजनैतिक सुधारों के पथ-प्रदर्शक, भारतीय भाषायी प्रेस के प्रवर्तक, ब्रह्म समाज के संस्थापक एवं आधुनिक भारतीय उदारवादी परंपरा के अग्रदूत के रूप में राजा राममोहन राय को जाना जाता है। वे विभिन्न धर्मों के यथा हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम के मूलभूत सिद्धांतों से भी परिचित थे। वे ब्रिटिश संसद के द्वारा भारतीय मामलों पर परामर्श लिये जाने वाले प्रथम भारतीय थे, जहाँ उन्होंने भारतीय प्रशासन पद्धति के सुधार के संबंध में सुझाव दिये। राजा राममोहन राय के योगदान को निम्नलिखित तथ्य-बिंदुओं के अंतर्गत देखा जा सकता है-

सामाजिक क्षेत्र

राजा राममोहन राय के समय भारतीय समाज अनेक कुरीतियों, रूढ़िवादिताओं एवं अंधविश्वासों से जकड़ा हुआ था। सामाजिक जीवन में जड़ता एवं कूप-मण्डूकता की स्थिति थी। ऐसे समय में उन्होंने विवेक और प्रकाश की ज्योति दिखाई और जड़ता को दूर कर ***भारतीय समाज को आधुनिक बनाने का प्रयास किया।*** उनका विचार था कि *पहले सामाजिक और धार्मिक सुधार हो तभी राजनीतिक सुधार एवं राजनीतिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होगा। इसलिए उन्होंने सामाजिक-धार्मिक सुधारों को प्राथमिकता दी।*

राजा राममोहन राय के अनुसार, किसी कार्य का औचित्य या श्रेष्ठता न तो इस बात से सिद्ध होता है कि वर्षों से उसका अनुकरण हो रहा है और न ही इस बात से कि पश्चिमी देशों में इसका समर्थन है। इसलिए उन्होंने परंपरा के नाम पर धार्मिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त कुरीतियों का विरोध किया, तो दूसरी तरफ उन्होंने भारतीय संस्कृति के सकारात्मक पक्षों का अनुकरण किया। इसी प्रकार उन्होंने पाश्चात्य जीवन और संस्कृति के भी अंधानुकरण का विरोध किया परंतु साथ ही पाश्चात्य शिक्षा एवं यूरोपीय जीवन की लाभप्रद, उपयोगी वस्तुओं का समर्थन भी किया। वे वास्तव में पूरब और पश्चिम के उत्तम, सकारात्मक, रचनात्मक, मानवतावादी तत्वों का समन्वय करना चाहते थे। ***(पूर्व की संस्कृति और पश्चिम का विज्ञान)*** (प्राचीन भारतीय परंपरा एवं पश्चिमी आधुनिकता का समन्वय)

उन्होंने बाल विवाह, बहु-पत्नी प्रथा, कन्या वध एवं सती प्रथा का विरोध किया तथा विधवा पुनर्विवाह, अंतर्जातीय विवाह, स्त्री शिक्षा एवं पैतृक संपत्ति में उनके उत्तराधिकार आदि का समर्थन किया। इसके लिए उन्होंने ***आंतरिक सुधार प्रणाली का प्रयोग*** किया। उनका मानना था कि सुधार तभी प्रभावशाली एवं दीर्घकालिक हो सकता है जब वह समाज के अंदर से हो। इसके लिए जागरूकता बढ़ाना और रूढ़िवादी मानसिकता में परिवर्तन आवश्यक था। इस हेतु उन्होंने किताबें छपवाई, विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर बहस एवं विवादों का आयोजन किया, सुधारों के समर्थन में तर्क दिये तथा प्राचीन धर्मग्रंथों के उदाहरण एवं साक्ष्य प्रस्तुत किये। उन्होंने छुआछूत एवं समुद्र पार गमन निषेध का भी विरोध किया।

उन्होंने अमानवीय **सती प्रथा** के विरूद्ध व्यापक आंदोलन छेड़ते हुए लोगों की **मनोवृत्ति परिवर्तन** एवं जनजागरूता बढ़ाने के लिए अनेक परचे छपवाये, याचिकाएं प्रकाशित करवायीं, समितियों का गठन किया ताकि विधवाओं को बलात् आत्मदाह न करना पड़े। उन्होंने तर्कों एवं साक्ष्यों के आधार पर इस तथ्य को सिद्ध किया कि सती प्रथा हिन्दू धर्मशास्त्रों

NOTES

द्वारा समर्थित नहीं है बल्कि एक विकृत कुसंस्कार है। यह स्वार्थी लोगों द्वारा विधवाओं के भरण-पोषण के खर्च से छुटकारा पाने का उपाय मात्र है। उन्होंने ***समझाने-बुझाने की शक्ति (Persuasion)*** से लोगों की मनोवृत्ति में परिवर्तन किया और ब्रिटिश सरकार को दायित्वबोध कराकर, संबंधित कानून बनाने का दबाव बनाया। परिणामस्वरूप 1829 में तत्कालीन गवर्नर *जनरल विलियम बैंटिक* ने सती प्रथा को अवैध घोषित किया तथा इससे संबंधित कानून बनाये।

धार्मिक क्षेत्र

'*परमेश्वर एक है*' को मानने वाले राजा राममोहन राय ने विभिन्न धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया और उन विभिन्न धर्मों में विद्यमान उन नैतिक और सामाजिक तत्वों पर बल दिया जिसमें मानवतावादी पक्ष प्रमुख था। उन्होंने धार्मिक कर्मकांडों (मूर्ति पूजा, बलि प्रथा आदि) एवं आडम्बरों की बजाय सभी धर्मों की एकता, धार्मिक सहिष्णुता एवं मानव कल्याण पर बल दिया। उनके अनुसार *सभी राष्ट्रों के मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान है, मानव जाति एक परिवार है तथा विभिन्न राष्ट्र और जातियां उसकी शाखाएं है।* इस रूप में वे सार्वभौमतावाद एवं मानवतावाद के प्रशंसक थे।

1828 में उन्होंने ***ब्रह्म समाज*** की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य वैचारिक स्वतंत्रता एवं तार्किकता को बढ़ावा देकर मनुष्य को एक विवेकशील प्राणी के रूप में स्थापित करना ताकि वह स्वयं ही कुरीतियों एवं अंधविश्वासों का विरोध कर सके तथा प्राचीन भारत की उत्कृष्ट परंपराओं एवं पश्चिमी आधुनिकता का सम्मिश्रिण करते हुए जीवन में आगे बढ़े।

शिक्षा के क्षेत्र में

राजा राममोहन राय ने भारतीय भाषाओं (बांग्ला, फारसी, संस्कृत आदि) एवं साहित्यों को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ अंग्रेजी शिक्षा का भी समर्थन किया। वे ऐसी व्यावहारिक एवं रचनात्मक शिक्षा के पक्षधर थे, जो वैज्ञानिक चिंतन को भी बढ़ावा दे। उनका मानना था कि अंग्रेजी शिक्षा के अध्ययन से देश के लोग देश में नवीन वैज्ञानिक चिंतन, खोजों एवं मानवीय मूल्यों से परिचित होंगे जिसका सकारात्मक असर भविष्य में पड़ेगा।

आर्थिक विचार

आर्थिक क्षेत्र में उन्होंने जमींदारी प्रथा का विरोध किया और मजदूरों एवं किसानों को जमींदारों-जागीरदारों एवं शासन के शोषण से रक्षा की बात की। उन्होंने भारत से इंग्लैंड की ओर होने वाली 'धन की निकासी' का भी विरोध किया।

प्रेस एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संबंधी अधिकारों के पक्षधर

राजा राममोहन राय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अंग के रूप में प्रेस की स्वतंत्रता के प्रबल समर्थक थे, ताकि-

1. *सामान्य जनता को शिक्षित एवं जागरूक बनाया जा सके।*
2. *प्रेस के माध्यम से शासन की नीतियों एवं उद्देश्यों को जनता तक आसानी से पहुंचाया जा सके।*
3. *जनता की समस्याओं एवं शिकायतों और सरकारी नीतियों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया से शासन को अवगत कराया जा सके।*

उनके अनुसार- 'समाचार पत्रों का उद्देश्य तो जनता और शासन के मध्य एक कड़ी के रूप में काम करना है। उन्होंने 1821 में बांग्ला भाषा में '*संवाद कौमुदी*' और फारसी में '*मिरात-उल-अखबार*' नामक पत्रिका प्रारंभ की।

वास्तव में वे भारत में राष्ट्रवादी पत्रकारिता के जन्मदाता थे। उनकी पत्रकारिता ने देश के समस्त भागों में राष्ट्रीय पुनर्जागरण एवं मानवता का संदेश प्रसारित किया। राजा राममोहन राय द्वारा चलाये गये धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों की पहल एवं आंदोलनों ने कालांतर में राष्ट्रीय एकता की मूलभूत भावना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने अपने चिंतन और कार्यों से लोगों में बौद्धिक जागृति उत्पन्न की, जिसके परिणामस्वरूप लोगों की मनोवृत्ति में

परिवर्तन हुआ। उन्होंने रूढ़िवाद की बजाय उदारता, हीनता की बजाय देशप्रेम और प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति गौरव-बोध कराया तथा विचार एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता तथा प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन किया। इन सभी स्थितियों ने देश के भावी स्वतंत्रता आंदोलन की नींव रखीं, जो आगे चलकर राष्ट्रीय स्वतंत्रता का आधार बने।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के शब्दों में- *'राजा राममोहन राय ने भारत में आधुनिक युग का सूत्रपात किया है।'*

स्वामी दयानंद सरस्वती (1825-1883)

प्रमुख नारा : 'पुनः वेद की ओर चलो (Back to the Vedas)

प्रमुख पुस्तक : 'सत्यार्थ प्रकाश'

दयानंद सरस्वती ने 1875 में बम्बई में *आर्य समाज* की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म को शुद्ध रूप से पुनः स्थापना करना था। उन्होंने वैदिक ज्ञान को सत्य एवं सर्वोच्च ज्ञान के रूप में स्वीकार किया तथा इसके माध्यम से उन्होंने हिन्दू समाज में प्रविष्ट धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक कुरीतियों को दूर कर सामाजिक एकता एवं सहयोग स्थापित करने का प्रयास किया।

धार्मिक क्षेत्र में उन्होंने मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि आदि धार्मिक कर्मकाण्डों का विरोध किया। उनके अनुसार *धर्म का अर्थ है ईश्वर के प्रति निष्ठा रखते हुए शाश्वत मानवीय मूल्यों को धारण करना।* इस रूप में उन्होंने मनुष्य को जीवन में मर्यादित एवं संतुलित दृष्टिकोण अपनाने की सलाह दी। उनके अनुसार ***व्यक्ति की अंतर्रात्मा अथवा निर्मल हृदय के आदेश ही जीवन के सटीक पथ प्रदर्शक है।*** इस रूप में उन्होंने न्यायप्रियता, सत्यनिष्ठता, परोपकार, सर्वहित कामना आदि गुणों को धार्मिक दृष्टिकोण से मान्यता प्रदान की। उन्होंने देश के लोगों में आत्मविश्वास, आत्मपरीक्षण, आत्मगौरव एवं आत्मशुद्धि की भावना को प्रसारित किया। इससे लोगों में आत्म विश्लेषण के माध्यम से अपने दोषों और कमियों को दूर करने का भाव उत्पन्न हुआ।

सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने छुआछूत, जन्माधारित जाति प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, बहुपत्नी विवाह, दहेज प्रथा आदि का विरोध किया एवं स्त्री-पुरुष समानता, सभी मनुष्यों का भ्रातृत्ववाद, न्याय निष्पक्षता एवं प्रेम की भावना का प्रसार किया। इनके अनुसार व्यक्ति में सेवा और त्याग की भावना होने पर ही सामाजिक कल्याण एवं सामूहिक उत्थान संभव है।

शैक्षणिक क्षेत्र में दयानंद सरस्वती ने केवल वेद और उपनिषदों में वर्णित पद्धति एवं परंपराओं को ही स्वीकार किया। 1902 में इन्होंने हरिद्वार में एक *गुरुकुल* स्थापित किया, जहाँ वैदिक शिक्षा प्राचीन पद्धति से दी जाती थी। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य विज्ञान एवं सामाजिक पक्षों की जानकारी के साथ-साथ चरित्र निर्माण, सेवा भाव एवं निष्ठा का भी विकास होना चाहिए। शिक्षा ही मनुष्य को सदाचरण में प्रवृत्त एवं दुराचरण से विमुख करती है। आर्य समाज द्वारा स्वीकृत सिद्धान्त एवं नियम वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। *प्रशासनिक संदर्भ* में भी निष्पक्षता एवं कार्य-कुशलता बढ़ाने तथा वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति में भी ये सहयोगी हैं। जैसे-

1. सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
2. संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।
3. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में संतुष्ट नहीं रहना चाहिए बल्कि सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
4. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम का अनुपालन करने का प्रयास करना चाहिए।

आर्थिक संदर्भ में स्वामी दयानंद **स्वदेशी** को विशेष महत्व देते थे।

NOTES

स्वामी दयानंद की शिक्षा के फलस्वरूप उनके अनुयायियों ने समाज को तोड़ने वाली प्रवृत्तियों का खंडन कर, निराशा और हीनता से मुक्त होकर, भारत के गौरवपूर्ण अतीत को याद करते हुए राष्ट्रीय चेतना जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। परिणामस्वरूप, उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में भी बढ़-चढ़कर भाग लिया।

वेलेन्टाइन शिरोल ने आर्य समाज को *'भारतीय अशांति का जन्मदाता'* कहा है।

ईश्वरचंद्र विद्यासागर (1820-1891)

विद्यासागर महान विद्वान एवं समाज सुधारक थे। उनमें गरीबों, असहायों एवं उत्पीड़ित लोगों के लिए अपार सहानुभूति थी। उन्होंने ***सामाजिक कार्यों द्वारा*** विभिन्न कुरीतियों का उन्मूलन कर ***सामाजिक सुधार*** का प्रयास किया। आधुनिक भारत के निर्माण में विद्यासागर ने अनेक प्रकार से योगदान दिया-

1. ***संस्कृत पढ़ाने के लिए नई तकनीक*** विकसित की और उसे सभी वर्गों के लिए खोल दिया। उन्होंने संस्कृत कॉलेज में भी पाश्चात्य चिंतन का अध्ययन आरंभ किया।
2. महिलाओं की सामाजिक स्थिति में सुधार के लिए निर्भय होकर समाज के रूढ़िवादी तत्वों से सतत् संघर्ष किया। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन, बाल विवाह का विरोध, बहु-पत्नी प्रथा का विरोध किया। उनके प्रयासों से विधवा पुनर्विवाह के पक्ष में आंदोलन आरंभ हुआ और अंतत: वर्ष 1856 में ***विधवा पुनर्विवाह*** अधिनियम पास किया गया।
3. ***नारी शिक्षा*** को बढ़ावा देने के लिए उन्होंने स्कूलों के सरकारी निरीक्षक के हैसियत से 25 बालिका विद्यालयों की स्थापना की। उनके प्रयासों से 1849 में कलकत्ता में बेथुन स्कूल की स्थापना हुई।

ज्योतिबा फुले (1827-1890)

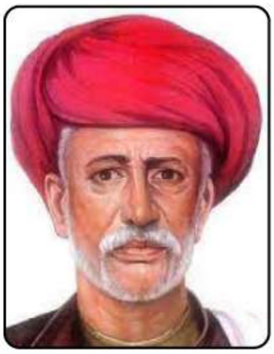

जन्म 1827 पूना में।

प्रमुख पुस्तकें: गुलाम गिरी, राजा भोसला का पखड़ा, किसान का कोड़ा, अछूतों की कैफियत आदि।

महाराष्ट्र में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के अग्रदूत। उन्होंने समाज सुधार आन्दोलन को नई दिशा और प्रेरणा दी।

एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसका आधार सामाजिक और न्यायिक समानता हो।

शूद्रों, अतिशूद्रों (अछूतों), महिलाओं के सम्मान, अधिकार और उनकी मुक्ति के लिए संघर्ष किया। किसानों और श्रमिकों के कल्याण के लिए प्रयास किया।

1. महिला कल्याण एवं उनमें जागरूकता हेतु लड़कियों का स्कूल खोला और उसमें अपनी पत्नी सावित्री बाई फुले को पढ़ाने भेजा।
2. स्वतंत्रता एवं समानता पर बल
3. सामाजिक न्याय पर बल, जाति प्रथा विरोधी अभियान चलाया।
4. अस्पृश्यता को मानव एवं ईश्वर के प्रति अपराध माना।
5. 1873 में सत्यशोधक समाज की स्थापना की। इसका उद्देश्य शूद्रों को दासता से मुक्ति हेतु अधिकारों के लिए जागृत करना था। उन्होंने धार्मिक कर्मकाण्डों का भी विरोध किया। मान्यता थी कि सभी मनुष्य ईश्वर की सन्तान है और ईश्वर सभी का अभिभावक है।
6. महात्मा गांधी ने उन्हें 'वास्तविक महात्मा' कहा।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR

सावित्री बाई फुले (1831-1897)

सावित्री बाई ज्योतिबाई फुले का जन्म 1831 में महाराष्ट्र के सतारा जिले के नायगांव में हुआ था। वे एक दृढ़संकल्पी शिक्षिका के साथ-साथ समाज सुधारक और कवियित्री थीं। वे शिक्षा के माध्यम से महिलाओं के विकास एवं उनके सशक्तिकरण की प्रबल समर्थक थी। उन्होंने तत्कालीन रूढ़िवादी समाज की अनेक मान्यताओं एवं कुरीतियों का दृढ़तापूर्वक विरोध किया। वे भारत की पहली महिला शिक्षिका के रूप में जानी जाती है।

महिलाओं में शिक्षा के सम्बन्ध में जागृति उत्पन्न कर उन्हें सशक्त बनाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। महिलाओं को सखी के रूप में सम्बोधित करते हुए उन्होंने 'स्वाभिमान से जीने के लिए पढ़ाई करो पाठशाला की', 'चलो, अब पाठशाला जाओ', 'इन्सानों का सच्चा गहना शिक्षा है', 'विद्या ही सच्चा धन है', 'शिक्षा के लिए जागृत हो जाओ', 'श्रेष्ठ धन' इत्यादि वक्तव्यों के माध्यम से उनकी मनोवृत्ति को परिवर्तित किया।

उन्होंने अपने पति ज्योतिबा फुले के साथ मिलकर स्त्री अधिकारों एवं स्त्री शिक्षा के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण कार्य किये। विरोध एवं विकट परिस्थितियों के बावजूद भी उन्होंने अपने पथ पर दृढ़तापूर्वक चलते हुए नारी शिक्षा, नारी जागृति का कार्य किया और बाल विवाह, विधवा पुनर्विवाह, बहू विवाह, छुआछूत आदि का विरोध किया। उनके प्रयासों के कारण भारतीय समाज में स्त्री चेतना का स्वर 19वीं सदी के सुधारवादी आंदोलन में दिखाई देता है। अपने पति के साथ मिलकर 'सत्य शोधक समाज' की स्थापना की।

उन्होंने 1 जनवरी, 1848 में पुणे में पहला बालिका विद्यालय खोला। बालिकाओं की शिक्षा हेतु विद्यालय की स्थापना की और उसकी पहली महिला प्रिंसिपल बनीं। उन्होंने लड़कियों के लिए 18 स्कूलों का निर्माण किया।

उन्होंने 1864 में बेसहारा स्त्रियों एवं विधवाओं के लिए आश्रम स्थल खोला।

उन्होंने महिलाओं के सम्बन्ध में चली कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया।

सावित्री बाई फुले का जीवन और कार्य भारतीय समाज में सामाजिक सुधार एवं महिला सशक्तिकरण का मिल का पत्थर है। वे आधुनिक युग में भी नारियों एवं महिला अधिकार कार्यकर्त्ताओं के लिए प्रेरणास्रोत बनी हुई हैं।

लोकमान्य बालगंगाधर तिलक (1856-1920)

तिलक ने महान ग्रंथ 'गीता' का कर्मयोगशास्त्र के रूप में व्याख्या कर देश में प्रवृत्ति मार्ग को प्रशस्त किया। लोगों में कर्मठता का संदेश प्रसारित किया। तिलक के अनुसार कर्मयोग जीवन, नैतिकता तथा धर्म का सारभूत एवं समुचित दर्शन है, जो स्वेच्छापूर्वक एवं निःस्वार्थ भाव से हमें सामाजिक एवं राष्ट्रीय कर्तव्यों के पालन का बोध कराता है। कदाचित इसी कर्तव्य बोध से प्रेरित होकर तिलक ने देश को ***स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है,*** का महामंत्र दिया तथा आध्यात्मिक स्तर पर कर्मयोग को मोक्ष के लिए स्वतंत्र एवं श्रेष्ठ मार्ग के रूप में प्रतिष्ठित किया।

गणपति उत्सव एवं शिवाजी उत्सव के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने का प्रयास किया। उन्होने भारत की आध्यात्मिक परम्परा और सांस्कृतिक मूल्यों के अनुरूप समाज सुधार करना चाहते थे। वे स्त्री शिक्षा एवं विधवा पुनर्विवाह के समर्थक थे। उन्होनें समाज में प्रचलित अस्पृश्यता एवं जाति-भेद का विरोध किया।

स्वामी विवेकानंद (1863-1902)

- बचपन का नाम नरेन्द्र।
- विवेकानंद का जन्म विश्वनाथ दत्त तथा भुवनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र के रूप में 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता में हुआ था।
- 1881 में पहली बार अपने गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस का सानिध्य मिला।
- 1887 में वराह नगर में विधिवत्‌रूप से संन्यास लिया और विवेकानंद नाम ग्रहण किया।
- 1893 में शिकागो में आयोजित विश्व धर्म संसद को संबोधित किया।
- 1895 में अपनी लंदन यात्रा के दौरान विवेकानंद ने वेदांत तथा सनातन धर्म का प्रचार प्रसार किया।
- 1896 में न्यूयार्क में वेदांत समीति की स्थापना की।
- अपने गुरू श्री रामकृष्ण परमहंस द्वारा प्रतिपादित विचारधारा के प्रसार के उद्देश्य से श्री रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।
- बेलूर मठ की स्थापना की।
- 4 जुलाई, 1902 को विवेकानंद महासमाधी में लीन हो गये।
- उनके चिंतन में आध्यात्मिकता, व्यावहारिकता एवं वैज्ञानिकता तीनों का समन्वय था।
- उनके जन्मदिन 12 जनवरी को देशभर में *राष्ट्रीय युवा दिवस* के रूप में मनाया जाता है।

नरेन्द्रनाथ या स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी, 1863 को कलकत्ता में हुआ था। वे महान संत होने के साथ-साथ महान देशभक्त, वक्ता, विचारक, लेखक एवं मानव-प्रेमी थे। वे ***नव्य-वेदांत दर्शन*** (Neo-Vedanta Philosophy) के मुख्य व्याख्याकार हैं। इनका मानना था कि नव-वेदांत दर्शन के आधार पर आधुनिक भारत में राष्ट्रवाद का विकास, सांस्कृतिक पुनर्जागरण, सुधार एवं नव-जीवन का रास्ता प्रशस्त किया जा सकता है। उनके नव-वेदांत के तीन महत्वपूर्ण पक्ष थे-

1. ईश्वर और मानव के बीच एकत्व और ब्रह्माण्ड की एकता में विश्वास।
2. जीवन से सन्यास नहीं बल्कि मानवता की नि:स्वार्थ सेवा का समर्थन।
3. विभिन्न धर्म एक ही चरम लक्ष्य की प्राप्ति के विविध मार्ग है।

नकारात्मक मनोवृत्ति में परिवर्तन

विवेकानंद का काल भारतीय गुलामी का काल था। उन्होंने पराधीनता की बेड़ियों में जकड़े, हीनता की ग्रंथि से ग्रसित भारतीय जनमानस को झकझोड़ कर जगाया। उन्होंने भारत की आध्यात्मिक परंपरा, सांस्कृतिक विरासत और दार्शनिक संकल्पनाओं की ऐसी प्रासंगिक व्याख्या प्रस्तुत की जिससे भारतवासियों में आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव का भाव उत्पन्न हुआ। उन्होंने भारत की प्रचुर आध्यात्मिक संपदा से पश्चिमी जगत को परिचय कराया और पश्चिमी जगत को इसकी आवश्यकता का बोध भी कराया।

उनका मानना था कि विदेशों में भौतिक समृद्धि अधिक है परन्तु हमें याचक नहीं बनना चाहिए। हमारे पास भी उनको देने के लिये बहुत कुछ है, जैसे- योग एवं आध्यात्म। अत: पश्चिमी जगत भारत से योग और आध्यात्म के संबंध में मदद ले सकता है और अपनी भौतिक समृद्धि से भारत को मदद पहुँचा सकता है। इस प्रकार समानता के आधार परस्पर आदान-प्रदान और सहयोग दोनों अर्थात् पूरब और पश्चिम के लिए आवश्यक है। इस प्रकार उन्होनें भारतीयों की हीनता की ग्रंथि को तोड़ा और आत्मसम्मान का भाव जागृत किया।

राष्ट्रीयता संबंधी अवधारणा

NOTES

विवेकानंद का मानना था भारतीय की गरीबी एवं दुर्दशा का कारण ब्रिटिश शासन की शोषणकारी आर्थिक नीतियाँ हैं। इनके निराकरण हेतु पहले यह आवश्यक है कि सामाजिक बुराईयों, अंध-विश्वासों एवं जातिगत ऊँच-नीच एवं छुआछूत दूर हो तथा उनके भीतर एकता, आत्मगौरव/स्वाभिमान का भाव उत्पन्न हो इसके लिए सांस्कृतिक पुनर्जागरण आवश्यक है।

1. उन्होंने अपने गुरूदेव श्री रामकृष्ण परमहंस के विचार एवं वेदांत की शिक्षा को अमेरिका और यूरोप में फैलाया और भारतीय संस्कृति की महत्ता बताते हुए इसके उत्थान एवं स्वतंत्रता हेतु विदेशियों की नकारात्मक प्रवृत्ति में परिवर्तन किया और उनका समर्थन प्राप्त किया।
2. देशवासियों के हृदय में देशप्रेम एवं समर्पण का भाव जागृत किया जिससे प्रेरित होकर अनेकों ने अपने जीवन को देश के लिए समर्पित कर दिया। इस रूप में राष्ट्रीय चेतना के निर्माण में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्होंने देश के प्रबुद्ध नवयुवकों में आत्म-गौरव एवं देशभक्ति की उदात्त भावनाएं उत्पन्न की। उन्होंने कहा- ***'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त करने तक न रूको।'*** आज भी युवाओं के जीवन में जब हताशा-निराशा होती है तो विवेकानंद का यह ओजस्वी, उत्साही एवं प्रेरणादायक संदेश जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है।
3. उन्होंने देश और विदेशों में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा गरीबों, दुखियों एवं रोगियों की सेवा के लिए रामकृष्ण सेवा आश्रमों की भी स्थापना की।
4. उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भगवान का सबसे प्यारा रूप **'दरिद्र नारायण'** है। जब हम दरिद्र को नारायण मानकर उसकी सेवा और सहायता करेंगे तभी हमारी आत्मा का शुद्धिकरण होगा तब हम ईश्वर-साक्षात्कार के योग्य हो जायेंगे। अतः ***गरीबों, असहायों एवं पीड़ित मानवता की सेवा ही ईश्वर की सच्ची सेवा है। यही ईश्वर की प्राप्ति का साधन है*** और यह योग, ज्ञान, भक्ति, ध्यान आदि के समान ही पवित्र साधन है। इस प्रकार विवेकानंद ने मानवतावाद को आध्यात्मिक आधार पर प्रतिष्ठित और प्रसारित करने का प्रयास किया।
5. **धार्मिक बहुलतावाद (Religious Pluralism) का समर्थन:** स्वामी विवेकानंद ने सभी धर्मों के औचित्य और उनकी स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार किया। उनके अनुसार सभी धर्मों का केन्द्र बिंदु ईश्वर है और हम से प्रत्येक उसकी प्राप्ति हेतु किसी एक रास्ते पर चल रहे हैं। धर्म के वाह्य स्वरूप में भिन्नता है परन्तु सबका आंतरिक उद्देश्य मानव-कल्याण है। ऐसी स्थिति में मनुष्य, मनुष्य के बीच प्रेम और सेवा का ही संबंध हो सकता है।

   परन्तु वे घृणा, धार्मिक आडम्बर, धार्मिक रूढ़िवादिताओं, हठधर्मिता और कट्टरता के विरोधी थे। यदि सभी मनुष्यों को एक ही धर्म, उपासना की एक ही सार्वजनीन पद्धति और नैतिकता के एक ही आदर्श को स्वीकार करने के लिये प्रेरित या विवश किया जाए तो संसार के लिए यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात होगी। इससे धार्मिक और आध्यात्मिक उन्नति पर आघात पहुंचेगा। अतः अच्छे या बुरे उपायों द्वारा दूसरों को अपने धर्म, मान्यताओं एवं आदर्शों को दूसरों के ऊपर लागू करने का प्रयास न किया जाए। विवेकानंद के अनुसार कोई भी धर्म सार्वभौम हो सकता है यदि उसमें भेदभाव न हो, उसका द्वार सबके लिये खुला हो, यदि वह मानवतावादी हो। सभी धर्म मनुष्यों के लिये, मानव के जीवन-यापन के मार्ग हैं, अतः मानवतावादी हैं, सार्वभौम हैं। यदि मानव में मानवता है और मानवता सार्वभौम है तो सभी धर्म भी मानव के लिये हैं, मानवतावादी हैं, सार्वभौम हैं। इस प्रकार सार्वभौम धर्म कोई विशेष धर्म नहीं, वरन् किसी धर्म का मानवतावादी स्वरूप है। यह बिल्कुल वास्तविक है। जिस प्रकार सत्य सार्वभौम हो सकता है, उसी प्रकार धर्म भी सार्वभौम हो सकता है। विवेकानंद सार्वभौम धर्म का नया स्वरूप बतलाते हैं।
6. विवेकानंद समस्त जीवों में एकता की बात करते हैं।
7. विवेकानंद ने देश सेवा को आध्यात्मिक आधार प्रदान करने हेतु **'भारत माता'** की संकल्पना प्रस्तुत की। उनका यह संदेश भारतीयों में आत्म-गौरव एवं देश प्रेम बढ़ाने में सहायक है कि-*"गर्व से कहो, मैं भारतीय हूं, सारे भारतीय मेरे बंधु हैं- चाहे उनमें कोई दरिद्र और पतित हो, चाहे कोई संपन्न और माननीय-हर कोई मेरा बंधु है। भारत की मिट्टी मेरे लिए परम स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है।"*

NOTES

8. विवेकानंद ने राष्ट्रीय विचारधारा को जो मोड़ दिया, उसने श्री अरविंद, बिपिनचंद्र पाल, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी जैसे राष्ट्र-पुरुषों के चिंतन के लिए उपयुक्त आधार-भूमि तैयार कर दी।

घटनाएँ एवं उनसे संदेश

11 सितंबर, 1893 में अमेरिका के शिकागो में ***विश्व धर्म संसद*** (Parliament of Religion) के अवसर पर स्वामी विवेकानंद को बोलने के लिए केवल 2 मिनट का अवसर दिया गया। उनके पास पहले से तैयार अपना भाषण नहीं था। परंतु उन्होंने तत्काल अपनी भावनाओं को विवेक से नियंत्रित किया और उस छोटे अवसर को भी अत्यंत सकारात्मक रूप से अपने उद्देश्यपूर्ति के लिए प्रयोग किया। उन्होंने सभागार में श्रोताओं को संबोधित करते हुए कहा कि- ***अमेरिकावासी बहनों एवं भाइयों!*** (Sisters and Brothers of America) उनके इस आत्मीय संबोधन मात्र से सभागार में उल्लास और हर्षोन्माद छा गया, देर तक तालियाँ बजती रहीं। उन्होंने इस अवसर पर सार्वभौमिक धर्म, सार्वभौमिक सहिष्णुता, भारत के समृद्ध इतिहास एवं इसकी आध्यात्मिक संपदा की ओर पूरे विश्व का ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने इस अवसर पर अद्वैत वेदांत दर्शन की व्यावहारिक एवं युगानुकुल व्याख्या करते हुए, वैश्विक एकता एवं भाईचारे का संदेश प्रसारित किया। उन्होने कहा कि मुझे ऐसे राष्ट्र का होने का गौरव प्राप्त है जिसने विश्व के सभी धर्मों एवं राष्ट्रों के उत्पीड़ितों एवं शरणार्थियों को शरण दी और भरण-पोषण किया। उन्होनें धर्मों की विविधता और लक्ष्य की एकता को इंगित करते हुए कहा कि-

''जैसे विभिन्न सरिताओं के स्रोत अलग-अलग स्थानों में होते हुए भी सरिताएं अपना सारा जल सागर में मिला देती हैं, उसी तरह हे प्रभु! मनुष्य अपनी अलग-अलग प्रवृत्तियों के फलस्वरूप जिन अलग-अलग पथों पर चलते हैं वे विविध प्रतीत हुए भी, घूमकर या सीधे सब तुझे ही प्राप्त होते हैं।''

संदेश : उपरोक्त संदर्भ ***सांवेगिक बुद्धि (Emotional Intelligence)*** का आदर्श उदाहरण है। यदि दिल और दिमाग का सम्यक् संतुलन हो तो फिर छोटे अवसर को भी बड़े उद्देश्यों की सिद्धि के लिए प्रयोग किया जा सकता। विवेकानंद की जगह पर कोई अन्य व्यक्ति होता तो हो सकता था कि वह भावुक होकर केवल 2 मिनट का समय मिलने पर नकारात्मक प्रतिक्रिया करता या फिर 2 मिनट में अपना परिचय और अपनी उपलब्धियों के बारे में बताकर वापस आ जाता।

शिकागो में विश्व धर्म संसद (सर्व धर्म सम्मेलन) की समाप्ति के पश्चात् स्वामी विवेकानंद को राजकीय सम्मान के साथ अत्यंत सुख-सुविधा संपन्न कक्ष में ठहराया गया। उस रात विवेकानंद अपने देश की दुर्दशा पर सोचते रहे, भाव-विह्वल होकर यह कहने लगे कि- "हे माँ! जब मेरी मातृभूमि अपार गरीबी में जकड़ी हुई है तो मैं इस नाम और यश का क्या करूँ? हम गरीब भारतीयों को कितने दुर्दिन देखने पड़ते है। वहां तो लाखों लोग मुट्ठी भर चावल के लिए तरसते हुए प्राण दे देते हैं और यहाँ ये लोग लाखों रूपये अपने निजी ऐश्वर्य पर खर्च करते हैं। उन्हें कौन रोटी देगा? हे माँ! मुझे मार्ग दिखाओ, मैं किस प्रकार उनकी मदद कर सकता हूँ?''

प्रशासन में उपयोग

उपरोक्त घटना ***तदनुभूति (Empathy)*** को इंगित करती है। प्रशासनिक अधिकारियों को भी कमजोर वर्गों, असहायों एवं समस्या से पीड़ित लोगों की भावनाओं को समझना चाहिए, उनसे अपने को जोड़ते हुए उनकी भावनाओं एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तदनुरूप कदम भी उठाने चाहिए।

1. प्रशासनिक अधिकारियों का यह दायित्व है कि वे विवेकानंद द्वारा दिये गये 'दरिद्र नारायण की संकल्पना' का अनुसरण करें तथा समाज में ***कमजोर वर्गों के प्रति समानुभूति, सहिष्णुता एवं करूणा की भावना रखें*** तथा उनकी सेवा और सुधार तथा राष्ट्रीय हितों की रक्षा करना ही अपना कर्त्तव्य मानें।
2. अगर आज विश्व विवेकानंद के बताये गये रास्ते विश्व-बंधुत्व पर चलता तो फिर आतंकवाद का उभार नहीं होता।
3. उनके विचार और कार्य अनेक शताब्दियों तक भावी पीढ़ियों का मार्गदर्शन करेंगे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर (1861-1941)

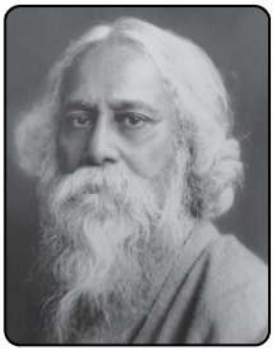

- कवि, नाटककार, उपन्यासकार, संगीतकार, गंभीर चिंतक, समाज सुधारक, एक शिक्षाविद्, एक राष्ट्रवादी, अंतर्राष्ट्रीयवादी, मानवतावादी, प्रकृति-प्रेमी एवं नव्यवेदान्ती दार्शनिक।
- प्रमुख रचनाएँ- 'साधना', 'Personality, Creative Unity', 'सिंधु' 'प्रकृति- प्रतिरोध', 'मानसी', 'डाकघर'।
- 1901 में उन्होंने शांति निकेतन विद्यालय की स्थापना की।
- 'गीतांजलि' काव्यकृति पर 1911 में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ।
- भारत के राष्ट्रगीत 'जन गण मन' की रचना गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर ने की थी।
- टैगोर का धर्म 'मानव-धर्म' और प्रेम इसकी प्राप्ति का साधन है। प्रेम से 'स्व' और 'पर' का भेद समाप्त हो जाता है तथा अभेद की स्थापना होती है। इस अभेद वैयक्तिक आत्म एवं परम आत्म के एक्य की अनुभूति ही मानव-धर्म का लक्ष्य है।

मनुष्य एवं ईश्वर (Man and God)

टैगोर के अनुसार ईश्वर परम सत्, परम व्यक्तित्व एवं परम चेतना है। वह नैतिक और सौन्दर्यपरक मूल्यों का पुंज तथा सृष्टि का आधार है। यह ईश्वर मनुष्य और जगत दोनों के माध्यम से अपनी अनन्त सृजनात्मक शक्ति को अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार टैगोर ईश्वर और मानवता में साहचार्य एवं समन्वय की स्थिति को इंगित करता हैं।

टैगोर अपने ग्रंथ 'Religion of Man' में वे कहते हैं कि - *''मेरा धर्म मानवीय धर्म* '(Religion of Man)' है जिसमें ईश्वर की व्याख्या मानवीय रूप में की जाती है।'' टैगोर के अनुसार- ईश्वर की अभिव्यक्ति तारे युक्त स्वर्ग में न होकर मानव आत्मा में होती है, अत: मानव की पूजा ही ईश्वर की पूजा है। इस प्रकार टैगोर ने मानव को प्रतिष्ठित एंव गौरवान्वित किया है।

टैगोर मानवता को वास्तविक मानते हैं। उनके अनुसार- सत्य मानवीय है (Truth is Human)। इस रूप में टैगोर के मानवतावाद को आध्यात्मिक मानवतावाद कहा जा सकता है, जहाँ मानव को महत्व प्रदान करते हुए भी ईश्वर को स्वीकार किया गया है। इस रूप में इनका मानवतावाद पाश्चात्य मानववाद (जॉन डिवी, अगस्त कॉम्टे आदि) से भिन्न है। टैगोर का यह मानववादी दृष्टिकोण विशुद्ध बुद्धि की उपज न होकर आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी प्रवृत्ति की देन है ।

मानव ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना है जो ससीम एवं असीम पक्षों का समन्वय है। मानव का ससीम शारीरिक पक्ष वैयक्तिक एवं नाशवान है जबकि असीम पक्ष आत्मा सार्वभौमिकता एवं सृजनात्मकता से युक्त है। इसी पक्ष के कारण मनुष्य भौतिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए निरन्तर ऊपर उठने के लिए प्रेरित एवं प्रवृत्त होता है। टैगोर काव्यमय भाषा में यह कहते हैं कि ईश्वर की वीणा में लोहे एवं ताँबे के अलावा एक सोने का तार भी है जो कि एक मनुष्य है। इस मनुष्य में एक आध्यात्मिक शक्ति हैं। परिणामस्वरूप उसमें ईश्वर की तरफ बढ़ने की शक्ति विद्यमान है। यही ईश्वरीय सत्ता ही मानव जीवन शक्ति का मूल स्रोत है।

चूंकि सभी मनुष्यों में ईश्वर आत्मा रूप में विद्यमान है, अत: हमारे व्यवहार में सबके प्रति आदर, सम्मान एवं प्रेम का भाव होना चाहिए। इसी संदर्भ में उन्होंने दो पक्षों पर बल दिया है- 1. ईश्वर की मानवीयता 2. मानव की ईश्वरीयता।

यहाँ दूसरा संदर्भ विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। जिसके अनुसार मनुष्य मनुष्य तो हैं ही परन्तु वह अपने उत्कृष्ट रूप में ईश्वरीय हो जाता है। उन्होंने मानव में निहित ईश्वरीय रूप को ही 'जीवन देवता' या प्राणों का देवता कहते हैं। स्पष्ट है कि व्यक्तिगत मनुष्य सृजनशील परमात्मा का प्रतिरूप है। अपनी सृजनात्मक क्षमता द्वारा मनुष्य अपने निहित स्वार्थो से ऊपर उठकर अहम् भाव को त्यागकर, उच्चतर आदर्श की ओर उन्मुख होकर अपनी वास्तविक ईश्वरीय स्वरूप की अनुभूति कर सकता है। यही मानव धर्म है। उनका कथन है कि- *'सब प्राणियों में ज्ञान द्वारा, प्रेम द्वारा और सेवा द्वारा समभाव रखना और इस प्रकार सर्वव्यापक में अपने रूप को अनुभव करना ही मानव धर्म का सर्वश्रेष्ठ तत्व है।'* इस रूप में मनुष्य की सेवा ही मनुष्य के लिए साधना का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

NOTES

मानव-धर्म या मानवतावादी दृष्टिकोण या धर्म का स्वरूप (Religion of Man)

मानववादी दार्शनिक रवीन्द्रनाथ टैगोर धर्म को मानव-धर्म (त्मसपहपवद वि डंद) कहते हैं। इसमें जीवन के सभी क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन, मानव की गरिमा और महत्ता, शांति और समन्वय का भाव विद्यमान है। इसमें स्वार्थ का परार्थ में रूपांतरण की बात की गई है। इसमें वैयक्तिक आत्मा का परमात्मा से एक्य का भाव विद्यमान है। स्पष्ट है कि उनके धार्मिक विचारों का केन्द्र बिन्दु मानव है । इनके अनुसार, मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन तथा जीवन के सभी क्षेत्रों में समन्वय एवं शान्ति लाने का कार्य धर्म करता है। मानव-धर्म में संकीर्ण भावनाओं एवं बाह्य आडम्बरों का कोई स्थान नहीं है।

टैगोर के अनुसार, चेतना मानव का आंतरिक धर्म है और इस चेतना को विकसित करना ही मानव का कर्म है। व्यक्तिगत चेतना, का समष्टिगत चेतना (सर्वात्म-भाव या परमात्म) की ओर अग्रसरित होना ही धर्म है। इस रूप में ध र्म व्यक्ति की आंतरिक शक्ति का पूर्ण विकास है। धर्म में मनुष्य कला, साहित्य, सौन्दर्य आदि के माध्यम से अपनी सृजनात्मक क्षमता को उद्घाटित कर आनंदित होता है।

संक्षेप में - 'मनुष्य के आंतरिक स्वरूप अर्थात् आध्यात्मिक पक्ष की सृजनात्मक अभिव्यक्ति एवं विकास ही मानव-धर्म है तथा वैयक्तिक आत्मा का परम-आत्म (सर्वात्म) के साथ प्रेम और आनंद में युक्त एकता की अनुभूति ही इस धर्म का लक्ष्य है।'

मानव विचार

टैगोर ईश्वर को परम् सत् के रूप में स्वीकार करते हुए भी मानव को विशिष्टता एवं गरिमा प्रदान करते हैं। टैगोर के अनुसार- मानव स्वरूप के दो पक्ष हैं-

1. ***ससीम पक्ष (शरीर)***
2. ***असीम पक्ष (आत्मा)***

मानव स्वरूप का ससीम पक्ष उसका शारीरिक, जैविक तथा भौतिक पक्ष है। इस पक्ष से शारीरिक सुख अर्जन की प्रवृत्ति, अहं-भाव, इच्छाओं का दास इत्यादि की प्रवृत्ति प्रबल होती है। स्पष्ट है कि सीमित मनुष्य से टैगोर का तात्पर्य साधारण शरीरधारी मनुष्य से है। इसमें भौतिकता एवं वैयक्तिकता प्रधान होती है।

असीम पक्ष में आध्यात्मिकता एवं सार्वभौमिकता प्रधान होती है। मानव का असीम पक्ष व्यक्ति को सदा और ऊपर उठने के लिए प्रेरित करता है। इसके परिणामस्वरूप मुक्ति की आकांक्षा, अमरता की चाह और प्रकृति की ओर आकर्षण उत्पन्न होती है।

टैगोर के अनुसार- मानव का असीम पक्ष अनिवार्यतः सृजनात्मक है। इस सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति उच्चतर स्तरों को प्राप्त करने के क्रम में होती है।

टैगोर आध्यात्मिक स्वंत्रता की वकालत करते हैं। इनके अनुसार ऐसी स्वंत्रता तभी संभव है जब मनुष्य अपनी चेतना को सार्वभौम रूप में विस्तृत कर एकत्व की अनुभूति करता है।

इस प्रकार टैगोर का यह मानना है कि मानव के विकास का आशय केवल शारीरिक समृद्धि नहीं है, बल्कि उसका आंतरिक विकास भी है, उसकी सृजनात्मक शक्तियों का विकास है, जिसमें आनन्द का भाव निहित है।

जगत विचार : टैगोर के अनुसार- ईश्वर ही परमसत् है और वही संपूर्ण ब्रह्माण्ड का आधार है। इस ईश्वर की ही आनन्दपूर्ण अभिव्यक्ति यह जगत है। अतः यह जगत मिथ्या या असत् न होकर सत् है। सृष्टि रचना ईश्वर का स्वभाव है। ईश्वर का आत्म-प्रकाश सृष्टि से ही अभिव्यक्त होता है। यह सृष्टि ईश्वर की लीला है। 'लीला' आनन्द की अभिव्यक्ति है। इस रूप में जगत ईश्वर से भिन्न नहीं है, बल्कि ईश्वरीय ही है। सृष्टि होने से मूलतः कोई तात्विक द्वैत उत्पन्न नहीं होता है। यहाँ ईश्वर असीम है, जबकि जगत ससीम है। असीम और ससीम उसी प्रकार एक हैं जिस प्रकार गायक और उसका गायन।

प्रकृति प्रेमी: टैगोर प्रकृति को जड़ या भौतिक नहीं मानते बल्कि वे प्रकृति में परमात्मा को अंतर्निहित मानते हैं। इसीलिए वे प्रकृति के सौंदर्य में ईश्वरीय सौंदर्य एवं आनंद की अनुभूति पर बल देते हैं। चूंकि प्रकृति का सौंदर्य ईश्वरीय आनंद की अभिव्यक्ति है इसीलिए ईश्वर को सर्वव्यापक स्वीकार करते हैं जो समस्त विविधताओं के पीछे विद्यमान एकत्व का आधार है।

प्रजातंत्र पर विचार: टैगोर प्रजातांत्रिक मूल्यों, यथा स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुत्व के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार इन लक्ष्यों की प्राप्ति तभी संभव है जब व्यक्ति लोभ एवं स्वार्थ से ऊपर उठकर नैतिक आचरण करें। अपने स्व को सर्वार्थ में, स्वहित को परहित में परिवर्तित करे। जब सबके कल्याण और राष्ट्र के विकास को प्रमुख लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जायेगा तभी वास्तव में जनतंत्र स्थापित होगा।

राष्ट्रीय गीत 'जन-गण मन' देश की एकता पर बल देता है और हमसे उनके प्रति समर्पित होने की मांग करता है। यहां भारत को माता के रूप में चित्रित किया गया है। इस रूप में वे देश की एकता और अखंडता को भावनात्मक रूप से अक्षुण्ण बनाये रखने की बात करते हैं।

शिक्षा संस्थान का नाम 'विश्व भारती' रखा जिसका आशय था उस दूर की मंजिल तक पहुंचने की तैयारी करना जहां संसार के लोग एक नीड़ को अपना घर बनायेंगे-यत्र विश्वम् भवति एकनीड़म्।

अंतर्राष्ट्रीयवाद: टैगोर का राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयवाद है। इस रूप में यहां 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा भी निहित है।

श्री अरविन्द (1872-1950)

- 20वीं शताब्दी के महान योगी, प्रखर चिन्तक, मौलिक विचारक, महान् दार्शनिक, भारतीय पुनर्जागरण एवं भारतीय राष्ट्रवाद की एक महान विभूति ।
- मानवतावादी, विकासवादी, नव्यवेदान्ती, समन्वयवादी (जड़वाद एवं वैराग्यवाद), स्वराज्य के प्रबल समर्थक।
- श्रीअरविन्द का जन्म कलकत्ता में एक सम्पन्न परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक एवं उच्च शिक्षा ब्रिटेन में हुई। इन्होंने प्रतिष्ठित कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी पढ़ाई की। इन्होंने आई.सी.एस. (Indian Civil Service) की परीक्षा उत्तीर्ण की परन्तु घुड़सवारी में असफल रहे।
- 1893 में वे भारत लौटे। बंग-भंग आंदोलन के दौरान इन्होंने लाल, बाल और पाल के साथ मिलकर कार्य भी किया।
- अलीपुर बम विस्फोट कांड में बंदी बनाये गये। चितरंजन दास ने इनकी पैरवी की।
- कारावास के दौरान आध्यात्मिक अनुभूति हुई। कारावास से निकलने के बाद ऐतिहासिक उत्तरपाड़ा भाषण दिया।
- 1910 में पांडिचेरी में अरविंदो आश्रम की स्थापना की।

  भारत में श्रीअरविन्द के जीवन को तीन चरणों में देखा जा सकता है-

  प्रथम चरण - क्रांतिकारी राष्ट्रवादी

  द्वितीय चरण - उग्र राष्ट्रवादी (गरमपंथी) तथा

  अंतिम चरण - आध्यात्मिक राष्ट्रवादी (1910-1950 तक)

  अरविन्दो का आध्यात्मिक राष्ट्रवाद संकीर्ण राष्ट्रवाद या उग्र राष्ट्रवाद नहीं है बल्कि यह मानवीय एकता, बधुत्व, सर्वकल्याण, वसुधैव कुटुम्बकम् एवं अन्तर्राष्ट्रीयतावाद पर आधारित है। इसी से प्रेरित होकर उन्होनें अपनी रचना 'The Ideal of Human Soul' में 'विश्व संघ' (World Union) की अवधारणा प्रस्तुत की जिसमें असमानता, पराधीनता, दासता, सैन्य नियंत्रण, बल पूर्वक प्रभुत्व स्थापना के स्थान पर समानता, स्वतंत्रता, बंधुता एवं मानवीय एकता का भाव प्रबल था।
- महत्वपूर्ण पुस्तकें : 'सावित्री', 'एसेज ऑन द गीता', 'लाइफ-डिवाइन', 'सिनथिसिस ऑफ योग', 'द् ह्यूमन साइकिल' आदि।
- **अतिमानस :** अतिमानस उच्चतर गोलार्द्ध का सत् है जिसे प्राप्त करने के लिए मानस को विकसित होना है। यह अतिमानस उच्चत्तर एवं दिव्य चेतना है जो मनुष्य तथा उसके जीवन को निम्न प्रकृति के आग्रहों एवं आकर्षणों के अज्ञान से मुक्त कर दिव्यसत् चेतना की ओर रूपान्तरित करता है। अतिमानस सत् का बोध पूर्ण अद्वैत एवं एकमात्र रूप में करता है। इस प्रकार अतिमानस विकास प्रक्रिया का उच्चत्तर गंतव्य है।

NOTES

- **मनस-अतिमनस :** अतिमानस उच्चतर गोलार्द्ध में स्थित पूर्ण अद्वैत रूप सत्ता है, वहीं मानस निम्नतर गोलार्द्ध में स्थित संभावनापूर्ण सत्ता है। मानस का लक्ष्य अतिमानस में रुपान्तरित होना है।
- **अतिमानव:** अतिमानसिक ज्योति की दिव्यता में रूपान्तरित मानव को ही अरविन्द अतिमानव कहते हैं।

अरविन्द का दर्शन ***पूर्ण अद्वैतवाद या सर्वांगीण अद्वैतवाद (Integal Advaitism)*** कहलाता है क्योंकि उनके दर्शन में स्वीकृत परमपूर्ण या सर्वांगीण परम तत्व में भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों पक्षों का अनुपम समन्वय विद्यमान है। यहाँ जड़ और चेतन के द्वैत को स्वीकार नहीं किया गया बल्कि जड़ और चेतन की अन्तर्निहित एकता पर बल दिया गया है।

अरविन्द के अनुसार विश्व-प्रक्रिया के दो रूप हैं- (1) अवतरण (2) आरोहण

अवतरण जहाँ उच्चतर का निम्नतर में अभिव्यक्त होना है, वहीं विकास निम्नतर का उच्चतर में विकसित होना है। यह विकास तभी सम्भव होता है जब अवतरण की प्रक्रिया पहले सम्पन्न हो।

अरविन्द में विकास सिद्धान्त में विभिन्न विकासवादी सिद्धान्तों के सभी प्रासंगिक पक्ष समाहित हैं और उनकी कमियों को दूर कर दिया गया है। इसीलिए इनके विकास सिद्धान्त को **'विकास का समग्रतावादी सिद्धान्त'** (Integral Theory of Evolution) कहा जाता है।

अरविन्द के अनुसार विकास-प्रक्रिया त्रिरूपात्मक है। इसके तीन रूप हैं -

(1) प्रसारण या विस्तारण (Widening) (2) उन्नयन (Heightening) (3) एकीकरण (Integration)

विकास-प्रक्रिया में प्रारंभ में भूत अपने को विभिन्न रूपों में प्रस्फुटित करता है। वह सरल से जटिल रूपों में प्रस्फुटित होता है। यहाँ प्रत्येक नये विकसित रूप को पूर्णतया विस्तृत रूप में विकसित होने का अवसर मिलता है। उन्नयन में उच्चतर की ओर उन्मुखता होती है। इसमें निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर आरोहण होता है। परन्तु इस आरोहण के क्रम में पूर्ववर्ती रूपों का निषेध या निराकरण नहीं होता है।

एकीकरण विकास-प्रक्रिया का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है। इसका अर्थ है - 'अवतरण के द्वारा उत्थान' (Ascent through descent)। **उच्चतर रूप निम्नतर रूपों में अवतरित होकर उसके स्वरूप में ही परिवर्तन कर देता है और उसे भी ऊपर उठा लेता है। इससे सर्वांगीण उन्नति होती है।**

सम्पूर्ण योग या एकीकृत योग (Integral Yoga) या पूर्ण अद्वैत योग

'योग' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'संबंध' या 'मिलन'। इसी अर्थ में योग को सामान्यत: आत्मा एवं परमात्मा, भक्त एवं भगवान, जीव एवं शिव, सीमित एवं असीमित का मिलन या संबंध माना जाता है। अरविन्द भी योग के इस संबंधवाचक अर्थ को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार यह मिलन या संबंध जीव का पारलौकिक परमात्मा से हो सकता है, आत्मा का विश्वात्मा से हो सकता है अथवा आत्मा का अपने यथार्थ स्वरूप से हो सकता है। अर्थात् तीनों प्रकार का संबंध हो सकता है।

अरविन्द के अनुसार **विकास प्रक्रिया का चरम लक्ष्य** 'दिव्य जीवन' की स्थापना करना या दैविक जीवन की प्राप्ति करना है परन्तु इस दैविक जीवन का धरती पर कैसे अवतरण हो, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। अरविन्द का यहाँ यह मानना है कि धरती पर दैविक जीवन का आविर्भाव आवश्यक है, अवश्यम्भावी है परन्तु इसमें सहजता एवं शीघ्रता लाने के लिये योग आवश्यक है। चूँकि हमारा जीवन वाह्य-उन्मुखी होता है। अत: सामान्यत: विकास प्रक्रिया की गति धीमी होती है। इसमें गति लाने के लिये यह आवश्यक है कि वाह्य उन्मुखता को दूर कर आंतरिकता लाई जाए, आध्यात्मिकता लाई जाए। योग इसमें सहायक है।

अरविन्द के योग का लक्ष्य भौतिकता एवं शारीरिकता का निषेध करना या इससे परे जाना या आत्म एवं अनात्म का विवेक ज्ञान प्राप्त करना नहीं है, बल्कि इन सबको अति मानसिक ज्योति में रूपान्तरित करते हुए जीवन की पूर्ण दिव्यता को प्राप्त करना है। इनकी योग साधना में व्यक्तिगत मुक्ति की बजाय सर्वमुक्ति की आकांक्षा है।

मानव का अतिमानव में रूपान्तरण एवं अतिमानसिक दिव्यता में उसकी सत्ता की स्थापना के लक्ष्य से अरविन्द ने अपनी योग विधि में ***रूपान्तरण के त्रिविध स्तरों का प्रतिपादन*** किया है, जिन्हें आत्मिक, आध्यात्मिक एवं अतिमानसिक कहा जाता है। ये हैं-

1. आत्मिकता की प्रक्रिया (Process of Psychisation) 2. आध्यात्मिकता की प्रक्रिया (Process of spritualisation)

3. अति मानसिकता की प्रक्रिया (Process of Supermentalisation)

ये तीनों प्रक्रियाएँ आन्तरिक हैं। इसलिए अरविन्द के योग को आन्तरिक योग भी कहते हैं। यहाँ इन तीनों को पूर्ण योग के तीन सोपानों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। ये तीनों विधियाँ आंतरिक उत्थान की विधियाँ हैं, क्योंकि इनका लक्ष्य मानस को उच्चतर रूपों में रूपान्तरण करना है।

1. **आत्मिकता की प्रक्रिया:** इसका आशय है- जीवात्मा का अपने भीतर की आत्मीय शक्ति को जागृत करना। इस क्रम में मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर होता है। ***यह परिवर्तन हमारे भीतर सच्ची दृष्टि, सच्ची भावना और सही कर्त्तव्य की मानसिकता जागृत करता है। परिणामस्वरूप अहंकार, वासना, आवेग आदि नष्ट हो जाते हैं। यहाँ दैविक शक्ति जागृत होने लगती है और आत्मिकता का प्रसारण होता है।*** इस प्रकार आन्तरिकता के गहन होने की प्रक्रिया को यहाँ आत्मिकता की प्रक्रिया कहा गया है।
2. **आध्यात्मिकता की प्रक्रिया:** आध्यात्मिकीकरण योग की दूसरी कड़ी है। इसका अर्थ है- आत्म को अबाधित एवं विस्तारित करना। आत्मीयता की इस प्रक्रिया में भौतिक, जैविक एवं आत्मिक दृष्टि में आध्यात्मिक परिवर्तन आता है। परिणामस्वरूप आत्मा में यह क्षमता आ जाती है कि वह उच्चतर रूपों में अपने को रूपान्तरित कर सके। इससे उसमें शांति, शक्ति, ज्ञान और आनन्द का आगमन होता है। आत्मिकता की प्रक्रिया जहाँ हमारे जीवन के आंतरिक पक्षों को परिवर्तित करता है, वहीं आध्यात्मिकीकरण की प्रक्रिया में हम उच्च आध्यात्मिक स्तरों पर आरोहण करते हैं।
3. **अतिमानसीकरण की प्रक्रिया:** यह योग की तीसरी एवं अंतिम कड़ी है। इसमें आत्म उच्चतर चेतना के अवतरण को ग्रहण कर लेता है। अब उसकी चेतना भी ईश्वरीय हो जाती है, दृष्टिकोण में परिवर्तन होता है, द्वैत-भाव एवं विभिन्नताओं का लोप हो जाता है। पूर्ण अद्वैत एकत्व की चेतना स्पष्ट होती है। इस स्तर पर सभी प्रकार के मानसिक विकास शांत हो जाते हैं। यहाँ इस प्रक्रिया का विवरण देते हुए अरविन्द चार स्तरों का उल्लेख करते हैं- 1. अचंचलता, 2. शांति, 3. स्थिरता, 4. नीरवता

महत्व

1. आनन्दवाद एवं आशावाद का संदेश देता है।
2. जड़वाद एवं आध्यात्मवाद का समन्वय।
3. मानवता के उन्नयन एवं कल्याण की बात।
4. एक नये विश्व के निर्माण का आह्वान।

अतिमानस (Super Mind)

श्री अरविन्द के अनुसार अतिमानस उच्चतर गोलार्द्ध का सत् है जिसे प्राप्त करने के लिये मानस को विकसित होना है। यह अतिमानस अरविन्द के दर्शन में उच्चतर एवं दिव्य चेतना का नाम है जो मनुष्य तथा उसके जीवन को निम्न प्रकृति के आग्रहों एवं आकर्षणों के अज्ञान से मुक्त कर दिव्य सत् चेतना की ओर रूपान्तरित करता है। इस प्रकार अरविन्द ने उच्चतर गंतव्य और चरम लक्ष्य के रूप में अतिमानस को स्थापित कर जीवन के भविष्य को इंगित किया है।

अरविन्द के अनुसार अतिमानस एक ऐसी चेतना है जो पार्थिव तत्व को, मनुष्य की देह को उसकी जड़ता एवं अचेतनता से बाहर लाकर उसे आत्मा की दिव्यता में रूपांतरित कर सकती है। मानवता की समस्याओं को समुचित समाधान तभी संभव होगा जब मनुष्य अपने वर्तमान बौद्धिक स्तर से ऊपर उठकर नयी अतिमानस की भूमि पर अवस्थित होने का प्रयास करे। ऐसा होने पर ही बुद्धि के अज्ञान एवं कलुष दूर होंगे।

अरविन्द ने मनुष्य को अज्ञान एवं अंधकार से मुक्त करने के लिये अतिमानस का अद्भुत एवं अमर आश्वासन दिया है।

NOTES

सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (1888-1975)

- राधाकृष्णन् का दर्शन धार्मिक आध्यात्मवाद (*Religious Idealism*) कहलाता है।
- राधाकृष्णन् का दर्शन एक नवीन, सांस्कृतिक, समन्वयात्मक सिद्धान्त का प्रवर्तक है।
- पूर्व और पश्चिम की संस्कृति को एक-दूसरे के निकट लाने, एक-दूसरे का सहयोगी बनाने तथा उनकी विशिष्टता में एकता स्थापित करने का प्रयास किया।
- **प्रमुख पुस्तकें**- 'इण्डियन फिलॉसफी' 'द आइडियलिस्ट व्यू ऑफ लाइफ', 'द् फिलॉसफी ऑफ रवीन्द्र नाथ टैगोर', 'ईस्टर्न रिलीजन एण्ड वेस्टर्न थॉट', 'द् हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ', 'ईस्ट एण्ड वेस्ट इन रिलीजन', 'कॉल्की', 'माई सर्च फॉर टुथ' आदि।
- **समन्वयवादी क्यों**: राधाकृष्णन के दर्शन में जीवन के आदर्श एवं यथार्थ, धर्म एवं विज्ञान, परम्परा एवं आधुनिकता, भौतिकता एवं आध्यामिकता, पूर्व और पश्चिम, बुद्धि एवं अन्त:प्रज्ञा आदि के मध्य समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है।
- **एकवादी आध्यात्मवाद (*Monistic Idealism*)**: राधाकृष्णन के दर्शन को समान्यत: एकवादी आध्यात्मवाद कहा जाता है क्योंकि इनके अनुसार परमसत् एक है तथा वह जड़ रूप न होकर आध्यात्मवाद रूप है। परमसत् शुद्ध चेतना, शुद्ध स्वतंत्रता एवं अनंत सम्भावना से युक्त है।
- **ज्ञान के साधन**: राधाकृष्णन के अनुसार, ज्ञान प्राप्ति के तीन साधन है- 1. *इन्द्रिय ज्ञान (Sense Experience)* 2. *बौद्धिक ज्ञान* (Intellectual Cognition) 3. *अन्तर्दृष्टि ज्ञान (Intuitive apprehension).*

बुद्धि एवं अन्त:प्रज्ञा (*Intellect and Intution*)

अन्त:प्रज्ञा (*Intution*) बुद्धि की चरम अवस्था या परिपूर्णता है। बुद्धि द्वारा प्राप्त ज्ञान ज्ञाता एवं ज्ञेय, विषयी एवं विषय के द्वैत पर निर्भर करता है। व्यावहारिक जीवन ही सफलता हेतु ऐसा ज्ञान आवश्यक है। परन्तु इससे अद्वैत स्वरूप सत् का ज्ञान संभव नहीं है। दूसरी ओर, अन्त:प्रज्ञा से प्राप्त ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय के भेद से मुक्त होता है। इसी से सत् का साक्षात्कार संभव है। इस रूप में अन्त:प्रज्ञा बुद्धि की अपेक्षा उच्चस्तरीय है।

अन्त:प्रज्ञा सृजनात्मक है। यह केवल ज्ञान का एक साधनमात्र नहीं है बल्कि चिंतन का एक रूप भी है जिसमें शुद्ध बोध, समस्त सार्थकता एवं सम्पूर्ण सत्यता परिलक्षित होती है। यह अन्त:प्रज्ञा अबौद्धिक या कल्पना न होकर एक अखंड की पूर्ण चेतना तथा समग्र अनुभूति है जिसमें सम्पूर्ण मन की सक्रियता रहती है।

यद्यपि अन्त:प्रज्ञा बुद्धि से उच्चतर है परन्तु दोनों परस्पर विरोधी नहीं हैं। दोनों में साहचर्य एवं सहयोग है। जगत् की तार्किक व्याख्या हेतु बुद्धि आवश्यक है जबकि उसकी रहस्यात्मकता को ग्रहण करने की क्षमता केवल अन्त:प्रज्ञा में है। पुन: अन्त:प्रज्ञा के सारभूत सत्य को व्यक्त करने के लिये उसे बौद्धिक बनाना आवश्यक है, तभी उसे दूसरों के लिये सरल, सुबोध एवं सम्प्रेषणीय बनाया जा सकता है। इस कार्य के लिये अन्त:प्रज्ञा को बुद्धि का ही सहारा मिलता है। पुन: अन्त:प्रज्ञा के संबंध में स्पष्टीकरण का कार्य बुद्धि ही करती है। दूसरी ओर बुद्धि की पूर्णता अन्त:प्रज्ञा में होती है। इस प्रकार दोनों परस्पर पूरक हैं, प्रतियोगी या विलोम नहीं हैं।

राधाकृष्णन् के शिक्षा संबंधी विचार

राधाकृष्णन् के अनुसार- शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है अर्थात् उसके बौद्धिक, आध्यात्मिक, नैतिक, चारित्रिक तथा शारीरिक शक्तियों का समन्वित विकास करना है। इसके लिये वे शिक्षा के पाठ्यक्रम में दर्शन, साहित्य, विज्ञान, आध्यात्म विद्या, नीतिशास्त्र, भूगोल इत्यादि विषयों को स्थान देने के पक्ष में हैं। इनके अनुसार- शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं वरन् आत्मा का भी प्रशिक्षण है। वे शिक्षा द्वारा प्रत्येक मनुष्य में '*वसुधैव कुटुम्बकम्*' की भावना का विकास कर राष्ट्रीयता व अंतर्राष्ट्रीयता के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास करते हैं।

मानव असीम और ससीम का समन्वय है। असीम पक्ष का संबंध ईश्वर से है। जब इस असीम पक्ष से संबंधित कर्म किये जाते हैं तो वे उत्कृष्ट माने जाते हैं।

NOTES

मानव स्वरूप का असीम पक्ष उसका आध्यात्मिक रूप है जो ईश्वरत्व का रूप है।

जैसे- किसी भीषण कष्ट में पड़े व्यक्ति को स्वयं कष्ट झेलते हुए मदद करना, जीवन संघर्ष के लिए जूझ रहे व्यक्ति को ब्लड डोनेट करना, आपदा में फंसे व्यक्ति को बचा लेना, दुर्घटनाग्रस्त व्यक्ति को अस्पताल पहुंचाना आदि। ऐसी क्रियाओं की व्याख्या भौतिकतावादी कारणों या स्वार्थमूलक प्रवृत्तियों के आधार पर नहीं की जा सकती है। इसकी एक ही व्याख्या संभव है कि- उसके दुःख को अपना दुःख समझने लगते हैं, उसे अपना भाग मानने लगते हैं, उसके साथ ***एकत्व की अनुभूति करते हैं।*** हम उससे अपने को पृथक नहीं कर पाते हैं। यह एकत्व की अनुभूति ही ईश्वरत्व की अनुभूति है।

तथ्यात्मक बिंदु

- जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर 1889 को इलाहाबाद में हुआ था।
- 1912 में वे प्रथम बार कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए।
- 1920 में प्रतापगढ़ एवं 1921 में फैजाबाद में हुए किसान आंदोलनों का नेतृत्व किया।
- 1923 में वे प्रथम बार कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुने गए।
- 1929 में वे कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। वहीं उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में 'पूर्ण-स्वराज्य' की माँग की जिसे कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया गया।
- वे 1929, 1936 एवं 1937 में तथा 1951 से लेकर 1954 तक कांग्रेस के अध्यक्ष रहे।
- वे 1939 में कांग्रेस द्वारा नियोजित राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष भी थे।
- उन्होंने कुल 9 बार जेल यात्रा की जिसका सामूहिक समय 9 वर्षों से अधिक है।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह भारत के प्रधानमंत्री बने और लगभग 17 वर्ष इस पद पर बने रहें। 27 मई, 1964 ई० में अपनी मृत्यु के अवसर तक उन्होंने कार्य किया।

धर्म के दो रूप है।

1. **वाह्य रूपः** जिसकी अभिव्यक्ति रीति-रिवाज, पूजा, प्रार्थना, रहन-सहन, मंदिर-मजिस्द आदि के रूप में दिखाई देता है। इसको लेकर विभिन्न संप्रदायों में भिन्नता एवं विरोध है। यही संघर्ष का कारण भी बनता है।
2. **आंतरिक स्वरूपः** आंतरिक स्वरूप ही धर्म का सार है। यह सार्वभौम है। यह आंतरिक स्वरूप धार्मिक अनुभूति है जिसमें ज्ञानात्मक, क्रियात्मक एवं भावनात्मक पक्ष तीनों सम्मिलित है। इसके अंतर्गत करूणा, प्रेम, त्याग, समदृष्टि, सहयोग आदि। सभी धर्मों में एक ऐसी मूल एकरूपता है जो वाह्य पक्षों से ऊपर उठी हुई है। स्पष्ट है कि धार्मिक विवाद धर्म के सार रूप से संबंधित विवाद नहीं है। जब मानव अपने भीतर ईश्वरीय गुणों की अनुभूति करता है तो वही सच्ची धार्मिक अनुभूति है वह आध्यात्मिक मूल्यों विश्वास और उन्हें साकारित करने के सकारात्मक ढंग में आस्था रखता है। होने पर ही सर्वमुक्ति संभव है।

वर्तमान समय में व्यक्ति एक ओर तो अहम् भाव से ग्रसित है तो दूसरी ओर वह सांसारिक उपलब्धियों के प्रति आसक्त है। परिणामस्वरूप समाज में नाना-प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो रही है।

राष्ट्र एवं युग निर्माता संत तुकडोजी महाराज (1909 - 1968)

बहुजाति, बहुधर्मी, बहुभाषी भारत की अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखने में हमारे संत तथा समाजसुधारकों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। महाराष्ट्र की पवित्र मिट्टी ने ऐसे कई व्यक्तित्वों को जन्म दिया है, जो मात्र भारत ही नहीं, बल्कि अखिल विश्व के कल्याण की कामना करते रहे और अखिल मानवजाति के लिए अपना संपूर्ण जीवन दाँव पर लगा दिया तथा संकीर्ण मनोवृति, शोषण एवं उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह किया है। उन्होंने सामाजिक शांति के लिए भावनात्मक एकता का सपना देखा और उसकी पूर्ति हेतु अपना सर्वस्व होम किया। ऐसे राष्ट्र एवं युग-निर्माता संतों में महत्त्वपूर्ण हैं-संत तुकडोजी महाराज। शोषणमुक्त समाज की स्थापना का प्रयास

NOTES

जात-पात, ऊँच-नीच की भावना तथा समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता को भी समाप्त करना चाहते थे। उन्होंने अपने भजनों एवं कृत्यों से देशवासियों के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार किया। उन्होंने समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं कुप्रथाओं को उजागर किया। भंगी-मुक्ति आन्दोलन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। पंढरपुर के विट्ठल मंदिर को अस्पृश्यों के लिए खुलवाने में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। उन्होंने उज्ज्वल भारत का सपना देखा। वे भारत की एकता और सद्भाव के प्रबल समर्थक थे। उन्हीं के शब्दों में-

'तन-मन-धन से सदा सुखी हो भारत देश हमारा।

सभी धर्म अरु सभी पक्ष को, दिल से रहे पियारा।।'

उनके अनुसार सच्चा धर्म एक ही है- वह है मानव धर्म। जो इंसान को नेक और सरल हृदयी बनाये।

उन्होंने 'ग्राम गीता', 'गांधी गीतांजलि', 'राष्ट्रीय भजनावली' इत्यादि हिंदी-मराठी ग्रंथों की रचना की।

भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने उन्हें राष्ट्र-संत की उपाधि से विभूषित किया।

सरदार बल्लभ भाई पटेल

'लौह पुरुष' के नाम से विख्यात बल्लभ भाई पटेल का जन्म 11 अक्टूबर 1875 को गुजरात के काठियावाड़ में एक कृषक परिवार में हुआ था।

व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पक्षः दृढ़-निश्चयी एवं निर्भीक, राष्ट्रभक्ति, संवेगात्मक बुद्धि, दूरदर्शी, राष्ट्र के प्रति समर्पण एवं त्याग, अनुनय क्षमता *(Persuation skill)*, व्यक्तिगत राग-द्वेष और पूर्वाग्रह से रहित।

1917 से उन्होंने सामाजिक कार्यों में गंभीरतापूर्वक भाग लेना शुरू किया। उन्होंने राजनीतिक कार्यकर्ताओं और आम जनता को उपनिवेश विरोधी संघर्ष हेतु तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। पटेल ने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में किसानों और युवाओं को जोड़ने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया।

पटेल ने खेड़ा और वारदोली के किसान आंदोलन, गुजरात में असहयोग आंदोलन और नागपुर के ध्वज सत्याग्रह करने में सक्रिय भूमिका निभाई। महात्मा गांधी के वफादार सहयोगी (छोटा भाई-बड़ा भाई का संबंध) के रूप में कार्य करते रहे।

1928 में गुजरात के बारदोली आंदोलन में उनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। वहाँ प्रान्तीय सरकार ने किसानों के लगान में 30 प्रतिशत तक की वृद्धि कर दी थी। पटेल के विरोध के कारण अन्ततः अंग्रेज सरकार को विवश होकर किसानों की माँगों को मानना पड़ा। पटेल के नेतृत्व में हुए इस सफल सत्याग्रह आंदोलन के पश्चात वहां की महिलाओं ने वल्लभ भाई पटेल को **'सरदार'** की उपाधि प्रदान की।

प्रशासक के रूप मेंः आदर्श प्रशासक, महान संगठनकर्ता, बुद्धिमान प्रशासक, जनहित के रक्षक।

नेता के रूप मेंः जनसाधारण की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं, भय और शंकाओं से अवगत होना चाहिए, राजनीतिक योद्धा, संगठनकर्ता।

15 अगस्त, 1947 को भारत के आजाद होने पर उन्हें भारत का प्रथम उपप्रधानमंत्री बनाया गया तथा साथ ही उन्होनें गृह-मंत्रालय एवं दूरसंचार विभाग को भी संभाला।

आजादी के साथ मुख्य रूप से ये समस्याएं उभरी-

1. विभाजन के बाद छिन्न-भिन्न हुए प्रशासन को व्यवस्थित करना और उसे सुदृढ़ एवं प्रभावी बनाना
2. प्रांतीय समस्याओं को सुलझाकर रियासतों का एकीकरण
3. विभाजनजन्य दंगों का सामना, नियत्रंण एवं विस्थापितों का पुनर्वास,
4. देश में एकता की भावना को उत्पन्न करना।

सरदार पटेल ने अपनी संवेगात्मक बुद्धि, उत्कृष्ट संगठनात्मक क्षमता एवं दूरदर्शितापूर्ण कुशल नेतृत्व का परिचय देते हुए प्रभावी रूप से उपरोक्त समस्याओं का समाधान किया, जिसके कारण ही राष्ट्र उन्हें श्रेष्ठ प्रशासक और राष्ट्रनिर्माता के रूप में याद करता है।

पटेल ने यह भाँप/समझ लिया था कि भारत तभी शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर सकता है जब वहां राजनीतिक स्थिरता हो। ऐसा तभी संभव है जब **प्रशासनिक एकता** हो। इसलिए स्वाधीनता प्राप्ति के तुरंत बाद उन्होंने दो वर्ष के भीतर अपनी दूरदर्शितापूर्ण नीति एवं समझाने-बुझाने की शक्ति ***(Persuation)*** और सतत् प्रयास से 500 देशी रियासतों को भारतीय संघ में विलयकर देश को एक सूत्र में बांध दिया। इस रूप में एक नये अखंड भारत के निर्माण में उनकी भूमिका अद्वितीय रही। वे वास्तव में ***भारत की एकता के शिल्पी*** है।

वे अपनी प्रेरक शक्ति एवं प्रभावी कार्य प्रणाली से ***प्रशासनिक एकता*** लाने में सफल हुए जो इस प्रशासनिक एकीकरण को **अभी भी भावात्मक एकता एवं राष्ट्रीय एकता में रूपांतरित करना शेष रह गया है।** हम इतने वर्षों में यही कुछ करने का प्रयास कर रहे हैं। राज्य बन चुका है राष्ट्र बनाना अभी शेष है।

आज प्रांतीय हित, जातिगत हित, सांप्रदायिक हित, भाषायी हित आदि राष्ट्रहित को प्रभावित कर रहा है। ऐसी स्थिति में सरदार बल्लभ भाई पटेल की याद आती है। आज जिस चीज की जरूरत है वह हमारे देश की संपूर्ण एकता है।

जाति और धर्म को व्यक्तिगत मानना चाहिए और उसे सार्वजनिक मामलों में नहीं लाना चाहिए, अन्यथा सामाजिक जीवन दूषित एवं अपवित्र हो जायेगा।

हमारी जनता हमारी सबसे मूल्यवान निधि है। उनके भीतर ऐसी भावना लायी जानी चाहिए कि वे ***एक महान परंपरा वाले महान राष्ट्र के सदस्य है।*** ऐसा सांस्कृतिक दृष्टिकोण विकसित होने पर ही मानवीय मूल्यों को संरक्षण मिलेगा तथा व्यक्तियों में भावनात्मक एकता एवं उच्च आदर्शों को प्राप्त करने का भाव उत्पन्न होगा।

सरदार बल्लभ भाई पटेल जैसे व्यक्ति का जीवन आधुनिक भारत के एक महान निर्माता के निःस्वार्थ परिश्रम की याद दिलाता है। कर्तव्य के प्रति निष्ठा, अनुशासन, आज्ञाकारिता, उनका उत्साह और जीवन तक की बाजी लगा देने को तैयार रहना आदि ऐसे गुण हैं, जो हम सरदार पटेल के उदाहरण से सीखते हैं।

पटेल को अतीत का गहरा बोध था और साथ ही उनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टि भी थी। इसलिए उन्होंने अतीत के सकारात्मक पक्षों को जीवंत किया। उनके अनुसार जीवन को पीछे जाकर समझना और आगे बढ़कर जीना चाहिए। हमें अतीत से चिपकना नहीं चाहिए।

सिविल सेवा परीक्षा को पुनः स्थापित करते हुए भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय विदेश सेवा के रूप में चिह्नित किया।

जवाहर लाल नेहरू (1889-1964)

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के उत्तरार्द्ध एवं स्वतंत्र भारत के वर्तमान एवं भावी स्वरूप को जानने हेतु जवाहर लाल नेहरू के विचारों एवं कार्य प्रणाली को समझना आवश्यक है। वे विश्वशांति के अग्रदूत, राष्ट्र निर्माता, कुशल राजनीतिज्ञ, स्वतंत्रता आंदोलन के अग्रणी नेता, प्रगतिशील लोकतांत्रिक समाजवादी विचारक एवं भारत में वैज्ञानिक मनोवृत्ति के प्रबल समर्थक के रूप में जाने जाते हैं।

विचार के महत्वपूर्ण क्षेत्र	महत्वपूर्ण रचनाएं
राष्ट्रवाद	विश्व इतिहास की झलक (1933)
पंथनिरपेक्षता	आत्मकथा (1936)
लोकतांत्रिक समाजवाद	भारत की एकता (1941)
वैज्ञानिक मनोवृत्ति	भारत की खोज (Discovery of India) (1946)
विदेशनीति (पंचशील, गुटनिरपेक्षता, परमाणु निरस्त्रीकरण, अंतर्राष्ट्रीयतावाद, संयुक्त राष्ट्र संघ)	

NOTES

राष्ट्रवाद संबंधी नेहरू के विचार

नेहरू राष्ट्रवाद के भावात्मक पक्षों तथा उदार एवं संतुलित स्वरूप का समर्थन करते थे। अपनी पुस्तक 'भारत की खोज' में वे राष्ट्रवाद को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-'*राष्ट्रवाद वस्तुत: अतीत की उपलब्धियों, परंपराओं और अनुभवों की सामूहिक स्मृति है।* आज के युग में राष्ट्रवाद की भावना और अधिक सुदृढ़ हुई है। जब कभी संकट पैदा होता है तो राष्ट्रवादी भावना का उभार होता है और लोग अपनी पुरानी परंपराओं से शक्ति एवं संबल तलाश करते हैं। इस रूप में वर्तमान युग की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है- *अपने खोये हुए अतीत की फिर से खोज।'* इस प्रकार नेहरू ने अपने राष्ट्रवाद में भारत के अतीत, वर्तमान संकट, उनके समाधानों तथा भावी आकांक्षाओं को समन्वित करने का प्रयास किया है।

नेहरू ***उग्रराष्ट्रवाद के समर्थक न होकर उदार-राष्ट्रवाद के समर्थक थे।*** वे अन्य राष्ट्रों एवं उनकी संस्कृति तथा सभ्यताओं का भी आदर करते थे। उनका कथन है- ***'राष्ट्रवाद अपनी जगह अच्छा है, किंतु यह एक अविश्वसनीय मित्र एवं संदिग्ध इतिहासकार है।'*** राष्ट्रवाद अच्छा इस रूप में है कि यह एक देश के इतिहास को एक परिस्थिति में जीवन, विकास, शक्ति, संबल एवं एकता प्रदान करता है। परंतु जैसे ही राष्ट्रवाद के विकास के साथ-साथ *'मेरा देश सही, मेरा अतीत सही, अन्य गलत'* का विचार उभरता, वैसी स्थिति में राष्ट्रवाद अंतर्राष्ट्रीयतावाद के लिए भी घातक सिद्ध होने लगता है।

नेहरू एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्रों पर अपनी श्रेष्ठता एवं आधिपत्य जमाने का विरोध करते थे। उग्रराष्ट्रवाद अपनी ही संस्कृति एवं मान्यताओं को श्रेष्ठ मानकर अन्य देशों और समूहों को दबाना अपना वैध अधिकार मानता है, जो कि यह गलत है। उग्रराष्ट्रवाद की प्रवृत्ति अपने ही देश में तानाशाही की स्थापना कर सकती है और विश्व में युद्धों को न्योता दे सकती है। जापान और जर्मनी में कुछ इसी प्रकार की स्थितियां रही थीं। यही कारण है कि नेहरू शोषणकारी एवं अशांतिदायक उग्रराष्ट्रवाद के विरोधी थे।

राष्ट्रवाद का विकृत रूप कई घटनाओं के प्रति हमारे आंखों पर पट्टी बांध देता है, सत्य का पता नहीं चलने देता तथा कभी-कभी सच्चाई को तोड़-मरोड़कर पेश करता है।

नेहरू ***धार्मिक राष्ट्रवाद की बजाय, पंथनिरपेक्ष राष्ट्रवाद का समर्थन करते हैं।*** इनके अनुसार धार्मिक राष्ट्रवाद सांप्रदायिक, प्रतिक्रियावादी एवं प्रतिगामी विचारधारा है, जो राष्ट्र के सर्वांगीण विकास में बाधक है तथा राष्ट्रीय एकता की दुश्मन है। नेहरू धार्मिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता के समर्थक थे। यही कारण है कि उन्होंने **सहिष्णुतापूर्ण रचनात्मक राष्ट्रवाद की वकालत** की एवं बहुसंख्यक धर्म के आधार पर राष्ट्र निर्माण का विरोध किया। उनके राष्ट्रवाद का मूलमंत्र था- ***'सांस्कृतिक बहुलवाद एवं संश्लेषण'।*** इसमें प्रत्येक धर्म एवं विश्वास को पूरी स्वतंत्रता एवं सम्मान तथा प्रत्येक नागरिक को समान स्वतंत्रता एवं समान अवसर का भाव विद्यमान है। उनका कहना था कि- '*राष्ट्रवाद के नाम पर धर्म, जाति और संस्कृति का सहारा नहीं लेना चाहिए। हिन्दू राष्ट्रवाद या मुस्लिम राष्ट्रवाद जैसी कोई वस्तु नहीं है, केवल भारतीय राष्ट्रवाद का अस्तित्व है जिसमें धर्मवाद का कोई स्थान नहीं है।*' इस प्रकार नेहरू के राष्ट्रवाद में जनता का कल्याण एवं उनकी क्षमताओं में विश्वास प्रमुख तत्व है।

धर्मनिरपेक्षता (पंथनिरपेक्षता/सेक्युलरिज्म) पर नेहरू के विचार

जवाहरलाल नेहरू धर्म निरपेक्षता के पाश्चात्य अर्थ से प्रभावित थे। उन्होंने धर्म निरपेक्षता के अंतर्गत धर्म (रिलिजन) और राजनीति को एक-दूसरे से अलग करने पर बल दिया क्योंकि-

1. धर्म के उद्देश्य पारलौकिक है, जबकि राजनीति के उद्देश्य लौकिक है।
2. धर्म को राजनीति से मिलाने पर व्यवहार में सांप्रदायिकता की समस्या उत्पन्न हो सकती है।
3. धर्म और राजनीति के सम्मिलन से अल्पसंख्यकों को समस्यायें हो सकती है।
4. नेहरू के अनुसार धर्म रूढ़िवादिता और आस्था को स्वीकार करके तार्किक चिंतन और वैज्ञानिक मनोवृत्ति के विकास में बाधा डालती है, जबकि नेहरू वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन के घोर समर्थक है।

नेहरू जब धर्म को राजनीति से अलग करने पर बल देते हैं तो वे धर्म के प्रचलित सांप्रदायिक अर्थ को ग्रहण करते है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में 'धर्म' (Dharma) का आशय स्वकर्त्तव्य पालन, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों यथा- दया, करूणा, प्रेम, क्षमा, सत्य आदि से है। इस रूप में राजनीति को धर्म (Dharma) से युक्त

होना चाहिए। धर्म निरपेक्षता की अवधारणा में 'धर्म' का आशय इस परंपरागत अर्थ में न होकर पंथ (Religion) से है और राजनीतिक को पंथ से अलग होना चाहिए। धर्म और राजनीति के मिलाप का विरोध करते हुए भी नेहरू प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता देने का समर्थन करते हैं। वस्तुत: उनके पंथनिरपेक्षता के दो संदर्भ हैं-

1. *राज्य, राजनीति और शिक्षा को धर्म से अलग रखना तथा धर्म को व्यक्ति का निजी पक्ष मानना।*
2. *सभी धर्मों के प्रति समान आदर-भाव प्रकट करना तथा सबको समान अवसर उपलब्ध कराना।*

अंतर्राष्ट्रीयतावाद

जवाहरलाल नेहरू के ***अंतर्राष्ट्रीयतावाद*** को **पंचशील** के नाम से भी जाना जाता है। पंचशील का शाब्दिक अर्थ है- 'पांच प्रकार के नैतिक आचरण'। पंचशील के पीछे बौद्ध विचारधारा की शांति, करूणा, दया और परोपकार की भावनाएं विद्यमान थीं। इसे नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के क्षेत्र में लागू किया। इसमें ***राष्ट्रों के आचरण के नियमन संबंधी कुल पांच नैतिक सिद्धांत*** हैं-

1. *एक-दूसरे की प्रादेशिक अखंडता तथा प्रभुसत्ता का सम्मान।*
2. *पारस्परिक अनाक्रमण।*
3. *एक-दूसरे के आंतरिक मामलों में अहस्तक्षेप।*
4. *समानता के आधार पर पारस्परिक लाभ।*
5. *शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।*

पंचशील के उपरोक्त सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय तनाव को रोकने, समस्याओं का शांतिपूर्ण ढंग से निपटारा करने, विश्व के राष्ट्रों में सहयोग और भ्रातृत्व को बढ़ाने तथा विश्व शांति की स्थापना करने में सहायक है।

तथ्यात्मक बिंदु

- जवाहरलाल नेहरू का जन्म 14 नवम्बर 1889 को इलाहाबाद (वर्तमान में प्रयागराज) में हुआ था।
- 1912 में वे प्रथम बार कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए।
- 1920 में प्रतापगढ़ एवं 1921 में फैजाबाद में हुए किसान आंदोलनों का नेतृत्व किया।
- 1923 में वे प्रथम बार कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के सदस्य चुने गए।
- 1929 में वे कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गए। वहीं उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में 'पूर्ण-स्वराज्य' की माँग की जिसे कांग्रेस का उद्देश्य घोषित किया गया।
- वे 1929, 1936 एवं 1937 में तथा 1951 से लेकर 1954 तक कांग्रेस के अध्यक्ष रहे।
- 1939 में कांग्रेस द्वारा नियोजित राष्ट्रीय योजना समिति के अध्यक्ष भी थे।
- स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् वह भारत के प्रधानमंत्री बने और लगभग 17 वर्ष इस पद पर बने रहें। 27 मई, 1964 ई० में अपनी मृत्यु के अवसर तक उन्होंने कार्य किया।

नेहरू अंतर्राष्ट्रीय संदर्भों में परमाणु निरस्त्रीकरण, गुटनिरपेक्षता, अंतर्राष्ट्रीय कानून, संयुक्त राष्ट्र संघ के माध्यम से विश्व भर में गरीबी, अभाव, अशिक्षा, अस्वास्थ्य के उन्मूलन के अभियान में विश्वभर के राष्ट्रों के सहयोग एवं भागीदारी के समर्थक थे।

आर्थिक विचार

नेहरू ने स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के ढांचे के निर्माण के लिए कृषि और उद्योग पर बल दिया। उन्होंने पूर्णत: समाजवादी अर्थव्यवस्था के स्थान पर ***मिश्रित अर्थव्यवस्था*** का समर्थन किया जहां विकासशील गतिविधियों में सार्वजनिक और निजी दोनों क्षेत्र साथ-साथ भूमिका निभा सके। उन्होंने तीव्र औद्योगिकीकरण, भारी उद्योगों का विकास, नियोजन (***Planning***), विज्ञान एवं तकनीकी विकास, वैज्ञानिक मनोवृत्ति आदि पर विशेष बल दिया।

NOTES

वैज्ञानिक मनोवृत्ति *(Scientific Temperament)*

वैज्ञानिक मनोवृत्ति *एक महत्वपूर्ण मानवीय मूल्य* है। जब मानव का जीवन अंधविश्वास, पूर्वाग्रह, कुसंस्कार एवं रूढ़िवादी ज्ञान से संचालित न होकर विवेक आधारित ज्ञान से संचालित होने लगता है और ऐसा उसका स्वभाव हो जाता है तो उसे वैज्ञानिक मनोवृत्ति (Scientific Temperament) कहते है। स्पष्ट है कि वैज्ञानिक मनोवृत्ति का संबंध दृष्टिकोण, पद्धति एवं स्वभाव से है। यह स्वतंत्र एवं निष्पक्ष रूप से सोचने एवं कार्य करने, समस्याओं को सुलझाने तथा जीवन जीने का एक तरीका है। यह व्यावहारिक एवं विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करने की मनोवृत्ति है जिसमें किसी बात को उपलब्ध तथ्यों एवं साक्ष्यों के आधार पर ही स्वीकार किया जाता है। वस्तुत: वैज्ञानिक मनोवृत्ति प्रश्न पूछने और छानबीन या जांच-पड़ताल के बाद अपनी अवधारणाओं को बनाने की प्रवृत्ति है। यह मनुष्य की जागरूक एवं जिज्ञासु प्रवृत्ति को इंगित करता है। यह सहयोग, समीक्षा, सुधार, विनम्रता, मानवीय शक्ति में विश्वास, नवाचार एवं प्रगति (Progress) की मनोवृत्ति है। इसमें हठधर्मिता से मुक्त होकर, खुले मन से (Open-mindedness) सत्य की निरंतर खोज का प्रयास निहित होता है। नेहरू के अनुसार लोगों को वैज्ञानिक मनोवृत्ति से युक्त होना प्रगति का सूचक है।

वैज्ञानिक मनोवृत्ति के संबंध में नेहरू अपनी पुस्तक '***Discovery of India***' में कहते हैं कि- ''*आज सारे देशों और समुदायों के लिए विज्ञान का उपयोग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। लेकिन विज्ञान का उपयोग ही पर्याप्त नहीं है। असली चीज है वैज्ञानिक दृष्टि, साहसिक किंतु विवेकपूर्ण विज्ञान की दृष्टि, नये ज्ञान और सत्य की खोज, बिना जांचे परखे किसी बात को न मनाने का इरादा, नये तथ्यों के प्रकाश में पूर्व निर्णयों को बदलने की क्षमता, प्रचलित सिद्धांतों के स्थान पर वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का सहारा, मन का दृढ़ अनुशासन- ये सब विज्ञान के लिए नहीं, जीवन सत्य को जानने और उसकी विविध समस्याओं का हल करने के लिए आवश्यक है।*''

देश के समग्र विकास हेतु जवाहर लाल नेहरू ने देश में वैज्ञानिक मनोवृत्ति को बढ़ावा दिया। इसके कई लाभ है-

1. वे आग्रहपूर्वक कहते हैं कि हमें केवल भौतिक विज्ञान, जीवन विज्ञान या रसायन शास्त्र के तथ्यों का सतही ज्ञान नहीं चाहिए, बल्कि हमारे भीतर वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास होना चाहिए ताकि हम न केवल अच्छे नागरिक बन सकें, बल्कि अपने विचारों एवं व्यवहारों को समुचित ढंग से नियंत्रित भी कर सके।
2. भारतीय समाज एक बहुधर्मी, बहुजातीय एवं बहुभाषीय समाज है। ऐसी स्थिति में सामाजिक विषमता को दूर करने, धार्मिक विभेद एवं प्रादेशिक झगड़ों का निपटारा कर उनकी सम्यक् प्रगति हेतु वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है। इसके माध्यम से ही समाज में समरसता (Harmony) आ सकती है एवं रचनात्मकता संभव हो सकती है।

   सांप्रदायिकता, कट्टरता, जातिभेद, दहेज प्रथा, भ्रूण हत्या, लैंगिक असमानता इत्यादि को केवल सरकारी उपायों के द्वारा पूर्णत: समाधान नहीं किया जा सकता। ऐसी समस्याओं के निदान हेतु संकीर्ण सोच को बदलना आवश्यक है। इस संदर्भ में वैज्ञानिक मनोवृत्ति की महत्ता निर्विवाद है।
3. नेहरू ने देश के आर्थिक विकास हेतु योजनाओं की कल्पना की एवं उसे कार्य रूप देने का प्रयास किया। यह उनके वैज्ञानिक मनोवृत्ति का ही परिणाम है। वस्तुत: भारत को एक मजबूत, आत्मनिर्भर, आत्मविश्वासी राष्ट्र बनाने तथा इसके समस्त नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाकर समस्त राष्ट्रीय हितों की सिद्धि हेतु वैज्ञानिक मनोवृत्ति का होना आवश्यक है। इसलिए भारतीय संविधान के *अनुच्छेद 51(क)* (मौलिक कर्तव्य) के अंतर्गत यह कहा गया है कि- "*प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण, ज्ञानार्जन एवं मानववाद की भावना का विकास करे।*"

वैज्ञानिक मानववाद *(Scientific Humanism)*

अन्य मानववादियों की भांति नेहरू के वैज्ञानिक मानववाद का केन्द्र मानव है। मानव प्रकृति का केन्द्रीय अंग है। मानव बिना किसी अलौकिक सत्ता की मदद के, अपने बुद्धि और शक्ति द्वारा वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान के उपयोग द्वारा अपनी समस्याओं का समाधान कर सकता है तथा लौकिक जीवन को उन्नत और समृद्ध बना सकता है। इस रूप नेहरू मानव की गरिमा, महत्ता एवं क्षमता में विश्वास करते थे।

नेहरू का मानववाद अंतर्राष्ट्रीयतावाद से प्रेरित था। उनके अनुसार आज का विश्व अंतर्राष्ट्रीय हो चुका है। उत्पादन, बाजार, परिवहन आदि अंतर्राष्ट्रीय हो गया है। विभिन्न राष्ट्र किसी न किसी रूप में परस्पर आश्रित है। अत: वैश्विक

स्तर पर मानव मात्र की उन्नति हेतु अंतर्राष्ट्रीय शांति, सुरक्षा, भाई-चारा, परस्पर मदद, सहयोग आवश्यक है।

NOTES

लोकतांत्रिक समाजवाद *(Democratic Sociolism)*

लोकतांत्रिक समाजवाद का आशय है-

1. समाज का संचालन लोकतांत्रिक तरीके से हो।
2. लोकतांत्रिक साधनों यथा शांतिपूर्ण एवं अहिंसक वैधानिक उपायों के माध्यम से आर्थिक विकास और सामाजिक-आर्थिक न्याय के समाजवादी लक्ष्यों की प्राप्ति हो।

लोकतांत्रिक समाजवाद को विकासवादी समाजवादी भी कहते हैं क्योंकि यह क्रांतिकारी परिवर्तन के बजाय क्रमिक सुधारों में विश्वास करता है। यह शांतिपूर्ण एवं लोकतांत्रिक साधनों जैसे संसद के द्वारा प्रगतिशील कानून का निर्माण, सामाजिक-आर्थिक नियोजन, नियतकालिक चुनाव, बहुदलीय व्यवस्था आदि में विश्वास रखता है।

लोकतांत्रिक समाजवाद राष्ट्रवाद का समर्थक है। यहां राष्ट्रीय एकीकरण, राष्ट्रीय भाषा, राष्ट्रीय गान एवं अन्य राष्ट्रीय प्रतीकों को महत्व दिया जाता है। इस रूप में यह राष्ट्रीय चेतना को बढ़ाने का समर्थक है।

लोकतांत्रिक समाजवाद मानवीय मूल्यों को महत्व देता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार अपने को विकसित करने का समान अवसर देने की बात करता है। यहां समानता के आदर्श प्राप्ति के साथ ही साथ सकारात्मक स्वतंत्रता का भी समर्थन है।

नेहरू मानवीय स्वतंत्रता और व्यक्तिगत अधिकारों के पक्षधर थे परंतु वे स्वार्थी व्यक्तिवाद का विरोध करते हैं।

भारत में समाजवादी विचारधारा का प्रवेश राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभ से ही हो गया था। राष्ट्रीय आन्दोलन का लक्ष्य देश के लिये राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के साथ-साथ समतायुक्त एवं न्याययुक्त समाज की स्थापना करना भी था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में समाजवादी लक्ष्य की प्राप्ति लोकतांत्रिक साधनों के माध्यम से प्राप्त करने का प्रयास नेहरू के नेतृत्व में प्रारंभ हुआ।

आजादी के उपरान्त जमींदारी उन्मूलन, अनेक उद्योगों एवं बैंकों का राष्ट्रीयकरण, भारतीय राज्यों के शासकों के विशेषाधिकार संबंधी 'प्रिवी पर्स' की समाप्ति, 42वें संशोधन द्वारा समाजवादी लोकतंत्र को सांविधिक रूप से पाने का प्रयास, सामुदायिक विकास कार्यक्रम, नियोजित अर्थव्यवस्था को लागू करके पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा एवं वैज्ञानिक संगठनों का प्रयोग करते हुए कृषि एवं उद्योगों को बढ़ावा देते हुए (हरित क्रान्ति, ऑपरेशन फ्लड आदि) भारत में लोकतांत्रिक समाजवाद को पाने का प्रयास किया गया। साथ ही संविधान के 73वें व 74वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा भी ग्राम पंचायतों व नगर पंचायतों तक के स्तर से लोकतांत्रिक समाजवाद को पाने का प्रयास किया जा रहा है।

लाल बहादुर शास्त्री

लाल बहादुर शास्त्री का जन्म 2 अक्टूबर 1904 को उत्तर प्रदेश के मुगलसराय (वर्तमान में दीनदयाल उपाध्याय नगर) में एक निर्धन परिवार में हुआ था। 1911 में काशी विद्यापीठ से उन्होनें 'शास्त्री' की उपाधि प्राप्त की।

व्यक्तित्व के मुख्य पक्षः ईमानदार, आदर्शवादी, सरलता, सहजता, विनम्रता, कर्मशीलता, दृढ़-निश्चयी, स्वाभिमानी

शास्त्री जी के बारे में किसी कवि ने कहा है-

'न कोई सुख-सुविधा
न अमीरों से ठाठ
नर्म बिस्तर तो नहीं
नसीब था केवल टाट
मेहनती, ईमानदार
और मन के बहुत सच्चे,
'नन्हे' अवश्य थे

NOTES

पर कद में बहुत ऊँचे।'

'कर्मों से ऊँचा किया,

भारत माँ का भाल।

ऐसे ही तो नहीं बने,

वे 'गुदड़ी के लाल'।'

सरलता, सादगी, न्यायप्रियता, विनम्रता, कर्त्तव्यनिष्ठा, दृढ़-निश्चयी और राष्ट्रहित के प्रति स्वयं को समर्पित कर देने वाले राजनेताओं में लाल बहादुर शास्त्री अग्रगण्य हैं। उनका कहना था कि 'मेहनत प्रार्थना के समान है।'

अपने कृतत्व, नेतृत्व, दूरदर्शिता एवं सांगठनिक प्रतिभा के कारण उन्होनें केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में कई विभागों का प्रभार संभाला और अपनी जिम्मेदारियों का बेहतर ढंग से निर्वहन किया। उनसे जुड़ी प्रत्येक घटना हमें कुछ न कुछ सीख देती है।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल में उन्हें रेल एवं यातायात का कार्यभार सौंपा गया। परन्तु उनके कार्यकाल के दौरान हैदराबाद में भीषण रेल दुर्घटना हुई। रेल मंत्री के होने के कारण उन्होंने इस दुर्घटना की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया।

27 मई, 1964 को जवाहरलाल नेहरू के निधन के पश्चात् उन्हें सर्वसम्मति से भारत के द्वितीय प्रधानमंत्री के रूप में चुना गया।

सन् 1965 में भारत पर जब पाकिस्तान ने हमला कर दिया था, तब लाल बहादुर शास्त्री ने लालकिला के प्राचीर से 'जय जवान, जय किसान' का नारा देकर देश के सैनिकों और किसानों के श्रम का सम्मान करते हुए उनका मनोबल बढ़ाया। उन्होंने पूरे भारत में एक नई चेतना जगाई।

प्रधानमंत्री बनने के बाद उन्होंने ईमानदारी, सरलता और सादगी की राह चुनी और पूरे देश को जोड़कर रखा। देश में दूध का उत्पादन बढ़ाने के लिए 'श्वेत क्रांति' को आगे बढ़ाया। भारत को सुदृढ़ बनाने के लिए हरित क्रांति की भी नींव रखी, जिससे देश खाद्य उत्पादन में आत्मनिर्भर बन सके।

शास्त्री जी विश्व शांति एवं सद्भाव में विश्वास रखते थे। वे भारत-पाकिस्तान के बीच शांति समझौता कराने के लिए ताशकंद में आयोजित वार्ता में गए। वहां दोनों पक्षों में समझौता हुआ। परन्तु वहीं पर 11 जनवरी, 1966 को अचानक दिल का दौरा पड़ने से उनकी मृत्यु हो गई। उनके द्वारा देश के लिए किए गए असाधारण कार्य एवं समर्पण को देखते हुए उन्हें मरणोपरान्त भारत रत्न से सम्मानित किया गया। उनकी सादगी एवं कर्मठता सबके लिए अनुकरणीय है। उनका जीवन हम सभी के लिए प्रेरणास्रोत है।

महात्मा गाँधी (1869-1948)

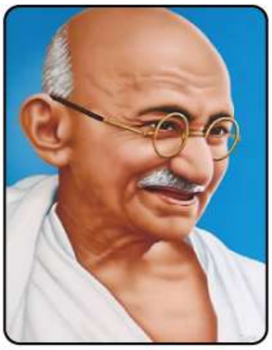

मोहनदास करमचन्द गांधी का जन्म 2 अक्टूबर, 1869 को गुजरात के पोरबंदर नामक स्थान पर हुआ था। सन् 1888 में विधि का अध्ययन करने हेतु गांधीजी इंग्लैंड गये। 1891 में उन्होंने इंग्लैंड से बैरिस्टरी पास की और पहले राजकोट में फिर बाद में बम्बई में वकालत करने लगे। 1893 में वे दक्षिण अफ्रीका एक मुकदमें की पैरवी में गये। वहां वे लगभग दो दशकों तक जाति और रंगभेद के कारण भारतीयों पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार का विरोध करते रहे। इसी समय में उन्होंने सत्याग्रह के विलक्षण एवं शक्तिशाली तकनीक का निर्माण किया। यही उन्होंने सत्य और अहिंसा का प्रथम प्रयोग किया। 1915 में वे भारत लौटे। जिस समय गाँधी भारत लौटे उस समय प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) का दौर चल रहा था। उन्होने सरकार के युद्ध प्रयासों में सहायता की। इसके लिए सरकार उन्हें केसर-ए-हिन्द सम्मान

से सम्मानित किया।

2 अक्टूबर को उनका जन्म दिन भारत में गांधी जयंती के रूप में और पूरे विश्व में अन्तरराष्ट्रीय अहिंसा दिवस के नाम से मनाया जाता है।

दक्षिण अफ्रीका में गाँधी की गतिविधियाँ

सन् 1893 में गाँधी दक्षिण अफ्रीका गये। वहाँ उन्होनें भारतीयों के साथ होने वाले शोषण और रंगभेद का विरोध किया।

1. गाँधी जी ने दक्षिण अफ्रीका में 1864 में ''नटाल इंडियन कांग्रेस'' की स्थापना की।
2. ''टॉलस्टाय फॉर्म'' की स्थापना की।
3. दक्षिण अफ्रीका में ''इंडियन ओपिनियन'' नामक अखबार निकाला।
4. 1904 में डरबन में ''फिनिक्स फार्म'' की स्थापना की।

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटकर 1915 में गाँधी जी ने अहमदाबाद में कोचरब क्षेत्र में साबरमती नदी के किनारे 'सत्याग्रह आश्रम' की स्थापना की। बाद में इसे 'साबरमती आश्रम' नाम दिया गया। गोखले को राजनैतिक गुरू मानते हुए उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता संघर्ष में सक्रिय भाग लिया। 1917 से गाँधी ने भारत में सक्रिय राजनीति में प्रवेश किया। कांग्रेस में व्यापक सत्याग्रह आंदोलन करने से पूर्व गांधी जी ने लघु स्तर पर तीन प्रमुख आंदोलन किए, जो स्थानीय समस्याओं को लेकर थे।

चंपारण सत्याग्रह : 16 अप्रैल 1917 से 6 अक्टूबर 1917 तक [*किसानों के हित के लिए पहली बार सविनय अवज्ञा*]

चम्पारण (बिहार) में 1917 में गांधी जी ने नील बागानों के खेतिहर मजदूरों के शोषण के विरूद्ध सत्याग्रह किया। चम्पारण सत्याग्रह की सफलता के कारण रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें 'महात्मा' के रूप में सम्बोधित किया।

भारत में गांधी का पहला सत्याग्रह, राजकुमार शुक्ल के आमंत्रण पर चम्पारण (बिहार) पहुँचें।

कारण : ''तीनकठिया पद्धति'' जिसके तहत किसानों को अपनी जमीन के 3/20वें हिस्सें (15 प्रतिशत) पर नील की खेती करना अनिवार्य था। ब्रिटिश नील उत्पादकों ने इस अनुबंध को खत्म करने हेतु लगान की दरें मनमाने ढंग से बड़ा दी। किसानों का उत्पीड़न।

प्रयुक्त साधन : वार्तालाप, जांच समिति का गठन, विरोध सभा, अल्टीमेटम, सुलह, आत्मशुद्धि हेतु प्रार्थना जिलाधिकारी के आदेशों के खिलाफ पहली बार भारत में गांधी जी द्वारा सविनय अवज्ञा

परिणाम : (1) सरकार द्वारा चंपारण कृषक जांच समिति का गठन जिसमें गांधीजी को भी सदस्य बनाया गया। 26 अप्रैल 1918 के कानून के द्वारा इस समिति के संस्तुतियों को अमली जामा पहनाया गया।

यह आंदोलन कृषक समाज में राजनीतिक व सामाजिक चेतना करने तथा उनमें एकता लाने में निर्णायक सिद्ध हुआ।

अहमदाबाद सत्याग्रह : 26 फरवरी 1918 से 18 मार्च 1918 [*मिल मजदूरों के हित के लिए पहली बार भूख हड़ताल*]

गांधी जी ने 1918 में **अहमदाबाद** मिल मजदूरों के अधिकारों की प्राप्ति एवं हितों की रक्षा हेतु सत्याग्रह किया गया। वहाँ पहली बार भूख हड़ताल का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में किया।

कारण : युद्धकालीन विशेष प्लेग बोनस के क्षतिपूर्ति के लिए अहमदाबाद मिल मजदूरों के द्वारा पगार वृद्धि की मांग।

प्रयुक्त साधन : 1. विरोध बैठक 2. पेम्पलेट्स 3. तीन दिन का उपवास 4. मध्यस्थता

परिणाम : 1. मध्यस्थ फैसले के मुताबिक मिल मालिकों ने मिल कर्मियों के वेतन में 35 प्रतिशत वृद्धि की

NOTES

मांग स्वीकार की। 2. सत्याग्रह मिल कर्मियों को एकजुट करने तथा उसमें राजनीतिक व सामाजिक चेतना जागृत करने में सफल साबित हुआ तथा 3. गांधीजी के अनिश्चितकालीन उपवास ने न केवल मिल मालिकों की नैतिक चेतना को जागृत किया बल्कि मिल कर्मियों के हृदय में भी उन्हें स्थापित कर दिया।

खेड़ा सत्याग्रह : 22 मार्च 1918 से 6 जून 1918 [*किसानों के हित के लिए पहली बार असहयोग का प्रयोग*]

1918 में गुजरात के **खेड़ा** जिलों में अंग्रेजी सरकार की लगान नीति के विरूद्ध सत्याग्रह किया था।

कारण : खेड़ा क्षेत्र सुरत में फसल सूख जाने के कारण खेड़ा कृषकों द्वारा भूमि कर वसूली को स्थगित करने की मांग तथा सरकार का नकार द्वारा दो टूक जवाब,

केन्द्रित : बम्बई सरकार

प्रयुक्त साधन : (1) लोक जांच के द्वारा स्थिति का जायजा (2) सुलह (3) विरोध बैठक (4) राजनीतिक संगठनों का गठन (5) सत्याग्रह प्रतीज्ञा (6) आत्मशुद्धि हेतु प्रार्थना (7) अल्टीमेटम (8) पैम्पलेट्स (9) कर-नहीं अभियान (10) गिरफ्तारी देना तथा (11) सत्याग्रही सहयोग।

प्रयुक्त साधन : (1) लोक जांच के द्वारा स्थिति का जायजा (2) सुलह (3) विरोध बैठक (4) राजनीतिक संगठनों का गठन (5) सत्याग्रह प्रतीज्ञा (6) आत्मशुद्धि हेतु प्रार्थना (7) अल्टीमेटम (8) राजनीतिक संगठनों का गठन (9) कर-नहीं अभियान (10) गिरफ्तारी देना तथा (11) सत्याग्रही सहयोग।

परिणाम : (1) कर देने में असमर्थ किसानों से कर वसूली को स्थगित किया गया तथा (2) पूरे गुजरात के कृषक समाज में अभूतपूर्ण राजनीतिक व सामाजिक चेतना का प्रसार, उन्होंने काहिली छोड़कर आत्मसम्मान व आत्मविश्वास को अपना हमदम बनाया। उन्हें इस बात का व्यापक अहसास हुआ कि उनके भी कुछ अधिकार हैं तथा एकजुट होकर वे उन अधिकारों को सार्थक व साकार कर सकते हैं।

प्रारंभिक तीनों सत्याग्रहों से मिली सफलता के उपरांत गांधी जी ने राष्ट्रीय सत्याग्रह आंदोलन में प्रवेश किया। 1919 में गांधीजी ने दमनकारी रौलट एक्ट का विरोध किया। 1 अगस्त 1919 से उन्होंने प्रथम अहिंसक असहयोग आंदोलन शुरू किया।

रौलैट कानून सत्याग्रह : 1 मार्च 1919 से 18 अप्रैल 1919

कारण : (1) 1919 के अराजक अपराध कानून के खात्मे तथा उस जैसे अन्य 11 प्रस्तावित कानूनों के पारित होने पर रोक की भारतीय मांग तथा स्वतंत्रता हेतु तीव्र होती राजनीतिक चेतना।

रौलेट एक्ट के विरूद्ध सत्याग्रह की शुरूआत की। रौलैट एक्ट के विरोध स्वरूप केसर-ए-हिन्द की उपाधि वापस कर दी।

परिणाम : (1) अराजक अपराध कानून को कभी अमल में नहीं लाया गया तथा दूसरे प्रस्तावित कानून को केन्द्रीय विधानसभा में नहीं रखा गया। (2) सत्याग्रह सभा के माध्यम से गांधीजी ने स्वैच्छिक कार्यकर्ताओं की टीम बनायी तथा उसके जरिए लोगों को सत्याग्रह के सही अर्थ व व्यवहार के बारे में शिक्षित करने का काम मिशन के रूप में शुरू कियाा (3) आंदोलन अभूतपूर्व जनचेतना का प्रयास करने सफल साबित हुआ।

जालियावाला बाग हत्याकांड : सन् 1919

रौलेट एक्ट एवं पंजाब के दो लोकप्रिय नेताओं सत्यपाल और डा॰ किचलू को नजरबंद करने के विरोध में 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जालियावाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई। यहाँ जनरल डॉयर के निर्देश पर निहत्थे लोगों पर गोली चलवाई गयी। जिसमें सैकड़ों लोग मारे गये और हजारों घायल हुए। इस घटना से गाँधी की ब्रिटिश सरकार की न्यायप्रियता में विश्वास टूट गया।

खिलाफत आंदोलन : सन् 1919

गाँधी ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना के लक्ष्य को लेकर खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया।

अहिंसक असहयोग आंदोलन : 1 अगस्त 1920 से 12 फरवरी 1922

1920 के कलकत्ता अधिवेशन में असहयोग आंदोलन शुरू करने का गांधी का प्रस्ताव स्वीकृत।

कारण : (1) पंजाब के निर्दोष लोगों को सुरक्षा देने तथा उनकी ओर असभ्य व असैनिक हरकत करने वाले दोषियों को सजा देने में सरकार की आपराधिक नाकामी। (2) औपनिवेशिक व भारत सरकार द्वारा तुर्की साम्राज्य के प्रभुत्व व अधिकार क्षेत्र को प्रथम विश्व युद्ध के स्तर पर बनाए रखने की स्वीकृति नहीं देना तथा (3) भारत के लिए स्वराज की उपलब्धि।

परिणाम : 1. आंदोलन अपने तत्कालीन लक्ष्य को पाने में असफल रहा। 5 फरवरी 1922 में गोरखपुर जिले के चौरा-चौरी में हिंसा की वजह से गाँधी ने इसे स्थगित कर दिया। उनका मानना था कि यदि साधन दूषित होता है तो साध्य भी अपवित्र हो जाता है। 2. सम्पूर्ण भारत में राजनीतिक चेतना जागृत, विदेशी प्रभुत्व के प्रति विरोध भाव बढ़ा

- *गाँधी केवल एक बार कांग्रेस के अध्यक्ष 1924 के बेलगाम अधिवेशन में रहे।*
- *लाहौर कांग्रेस अधिवेशन (1929) में भारत के लिए पूर्ण स्वराज की मांग उठी।*

सविनय अवज्ञा आंदोलन (नमक सत्याग्रह) : 12 मार्च 1930 से 6 अप्रैल 1930

1930 में गांधी जी ने नमक कानून तोड़ने के लिए दांडी सत्याग्रह किया। अंग्रेजी शासन की बिना आज्ञा प्राप्त किये नमक बनाने और नामक कानून का उल्लघंन करने का संकल्प लिया। 12 मार्च 1930 को गाँधी जी अपने 79 कार्यकताओं के साथ साबरमती आश्रम से दाण्डी की ओर पैदल चल पड़े। 24 दिनों की पैदल यात्रा के बाद 5 अप्रैल 1930 को गांधी अपने दल के साथ दाण्डी पहुंचे और 6 अप्रैल को दाण्डी समुद्र तट पर स्वयं नमक कानून को तोड़ा।

परिणाम : (1) 5 मार्च 1931 को गांधी-इरविन समझौता। (2) समझौते में भारतीय संवैधानिक सुधार के लिए और व्यापक तथा सार्थक विचार-विमर्श का प्रावधान (3) यह अभियान एक विशिष्ट नैतिक विजय के रूप में सत्याग्रह व जन-विश्वास दोनों को संकलित करने में उल्लेखनीय रूप से सफल साबित हुआ। (4) यद्यपि सत्याग्रह के तत्कालीन व दीर्घकालीन उद्देश्य की उपलब्धि पूर्णरूपेण नहीं हो पायी, लेकिन एक उल्लेखनीय नैतिक विजय के रूप में यह हुआ कि सरकार ने जनता के कुछ वर्ग को घरेलू खपत या गांवों के भीतर ही उनके बिक्री के नमक के स्थानीय संग्रहण व उत्पादन की अनुमति दी।

- 1932 में गाँधी ने लंदन में आयोजित द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लिया।
- 1932 में मैकडोनाल्ड का साम्प्रदायिक पंचाट के उपरांत गांधी, अम्बेडकर के मध्य पूना पैक्ट। पूना पैक्ट के बाद गाँधी जी ने जी॰डी॰ बिड़ला की अध्यक्षता में *अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी संघ* बनाया, बाद में यह ***हरिजन सेवक संघ*** में बदल गया।
- 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह आंदोलन

भारत छोड़ो आंदोलन : 9 अगस्त, 1942 से 21 जून 1945

1942 में उनके द्वारा राष्ट्रव्यापी भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ किया गया जिसमें उन्होंने ***'करो या मरो'*** ***(do or die)*** का नारा दिया।

अंग्रेजी शासन के तुरंत समाप्ति की भारतीय मांग तथा पूर्ण स्वराज की उपलब्धि

प्रयुक्त साधन : (1) विरोध सभा (2) आत्मशुद्धि के लिए प्रार्थना (3) बैठकों, सभाओं, मोर्चों व प्रदर्शनों का आयोजन (4) हड़ताल (5) 21 दिन का उपवास

NOTES

अंततः 1947 में भारत को आजादी मिली। जीवन के अंतिम दिनों तक वे बिड़ला भवन की प्रार्थना सभा में प्रवचन देने का कार्य करते रहे। इसी प्रार्थना सभा में 30 जनवरी 1948 को नाथूराम विनायक गोडसे ने उनकी हत्या कर दी।

प्रश्न : *सर्वोदय क्या है?*

उत्तर : समाज के सभी वर्गों (अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष आदि) के जीवन के सभी पक्षों (सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, आध्यात्मिक आदि) का सर्वांगीण उत्थान ही सर्वोदय है। इसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक उत्थान की बात निहित है।

प्रश्न : *न्यासधारिता या ट्रस्टीशिप क्या है?*

उत्तर : गाँधी समाज में आर्थिक विषमता निवारण हेतु ट्रस्टीशिप का समर्थन करते हैं जिसके अनुसार पूँजीपति अपनी अतिरिक्त संपत्ति को समाज की धरोहर मानकर, स्वयं को उसका संरक्षक मानकर, उसका उपयोग समाज-हित में करेगा।

प्रश्न : *न्यासधारिता किन दो विचारधाराओं के मध्य की अवस्था है?*

उत्तर : आर्थिक न्याय हेतु गाँधी प्रतिपादित न्यासधारिता की अवधारणा में उत्पादन के दृष्टिकोण से पूँजीवाद एवं उपभोग के दृष्टिकोण से समाजवाद को स्वीकार किया गया है।

प्रश्न : *न्यासधारिता का उद्देश्य बताएँ?*

उत्तर : गाँधी मतानुसार सर्वोदय के आदर्श की प्राप्ति तभी संभव है जब समाज में आर्थिक विषमता का निवारण हो, अमीर-गरीब, ऊँच-नीच आदि का भेद समाप्त हो। इस हेतु न्यासधारिता का प्रतिपादन किया गया है।

प्रश्न : *एकादश व्रत क्या है?*

उत्तर : सत्याग्रही के लिये 11 व्रतों का पालन आवश्यक है- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शारीरिक श्रम, अस्वाद, अभय, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी एवं अस्पृश्यता निवारण।

प्रश्न : *सत्याग्रह क्या है?*

उत्तर : सर्वोदयी आदर्श की प्राप्ति हेतु किये जाने वाला नैतिक एवं आध्यात्मिक संघर्ष ही सत्याग्रह है। इसमें अहिंसा के आधार पर असत्य पर आधारित बुराई का विरोध किया जाता है।

प्रश्न : *सत्याग्रह की विधियाँ बताएँ?*

उत्तर : सत्याग्रह की विधियाँ हैं- असहयोग, हिजरत (स्थान परिवर्तन), सविनय अवज्ञा, अनशन, हड़ताल, उपवास, कर न देना, आंदोलन एवं प्रदर्शन आदि।

प्रश्न : 'सत्य ही ईश्वर है' इसका आशय क्या है?

उत्तर : गाँधी मतानुसार सत्य परम मूल्य एवं सदाचरण है जिसकी पराकाष्ठा ईश्वर है। इस रूप में सत्य ही ईश्वर है।

प्रश्न : गाँधी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य क्या है?

उत्तर : गाँधी मतानुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य चरित्र-निर्माण, जीविकोपार्जन की प्राप्ति, सांस्कृतिक समृद्धि, वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास, शारीरिक एवं आध्यात्मिक उन्नति तथा राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास है। शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य आत्मबोध (*Self- realization*) है।

सर्वोदय

सर्वोदय सामाजिक-राजनीतिक आदर्श से संबंधित एक अवधारणा है, जिसका प्रतिपादन गाँधी ने सत्य, अहिंसा और अद्वैत की मूल भावना को साकारित करने के लिए किया था। यह सार्वभौमिक उत्थान की सामाजिक परिकल्पना है। जिसमें समाज के समस्त वर्गों एवं उनके जीवन के सभी पक्षों के उत्थान का भाव विद्यमान है। इसका लक्ष्य एक ऐसे सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है जिसमें शोषण, संघर्ष एवं प्रतियोगिता के स्थान पर सहयोग एवं प्रेम, विषमता के स्थान पर समता, वर्गहित के स्थान पर सर्वहित की मंगलकामना निहित होती है। (सर्वांगीण विकास की बहुलता) गाँधी सर्वोदय को जीवन-दर्शन के मूलभूत सिद्धांत के रूप में स्वीकार करते हैं। गाँधी की इस धारणा का पोषण एवं व्यावहारिक रूप देने का प्रयास आचार्य विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण आदि ने कालांतर में किया।

स्रोत : सर्वोदय की अवधारणा पर गीता, उपनिषद्, जैनों की अहिंसा, शंकर के अद्वैतवाद, बौद्ध धर्म के बोधि सत्व, बाइबिल, कुरान आदि के शिक्षाप्रद बातों का प्रभाव था। पुन: गाँधी के सर्वोदय पर थोरो, टालस्टॉय, रस्किन आदि के विचारों का भी प्रभाव था। गाँधी रस्किन की पुस्तक 'अन टु दिस लास्ट' (*Un to This Last*) से विशेष रूप से प्रभावित थे। इसमें तीन मुख्य बातें थीं-

1. व्यक्ति का हित समष्टि के हित में समाहित है अर्थात व्यक्ति और समष्टि में विरोध नहीं है।
2. सभी लोगों के श्रम की कीमत एवं महत्ता बराबर है।
3. किसान अथवा कामगार का जीवन ही सच्चा जीवन है अर्थात् उत्पादन प्रक्रिया में श्रम महत्वपूर्ण है।

रस्किन की इन बातों से गाँधी ने यह निष्कर्ष निकाला कि मानव जाति का कल्याण तभी हो सकता है जब विश्व के अंतिम व्यक्ति तक का कल्याण सुनिश्चित हो अर्थात् सबका उदय हो। गाँधी के अनुसार ईश्वरीय अंश होने के कारण प्राणियों में मूलभूत एकता है। ऐसे में एक व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास दूसरे का बाधक नहीं हो सकता। पुन: प्रत्येक के उत्थान से ही सर्वोदय की अवधारणा साकारित हो सकती है। सर्वोदय का यह विचार प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित आदर्शों से भी मेल खाता है। यहाँ यह कहा गया है कि -''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्व सन्तु निरामया:''। इन धर्मों एवं विचारों के अतिरिक्त गाँधी जी ने पश्चिमी प्रवास के दौरान पूँजी के केन्द्रीकरण से उत्पन्न आर्थिक विषमता, नैतिक पतन एवं पर्यावरणीय समस्या को भी निकटता से महसूस किया था जिसका प्रभाव सर्वोदय पर पड़ा है।

सर्वोदय का अर्थ

सर्वोदय दो शब्दों के योग से बना है - 'सर्व + उदय'। यहाँ सर्व का आशय है - सभी का, सभी प्रकार से, जबकि उदय का तात्पर्य है - उत्थान, कल्याण। यहाँ 'सभी का' से तात्पर्य अमीर एवं गरीब, स्त्री एवं पुरुष आदि सबसे है। यहाँ 'सभी प्रकार से' का आशय जीवन के समस्त पक्षों अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं नैतिक पक्ष से है। इस प्रकार से सर्वोदय का अर्थ ***समाज के सभी वर्गों के जीवन के सभी पक्षों के सर्वांगीण उत्थान से है।*** यहाँ जाति, धर्म, वर्ग, समुदाय, लिंग, संपत्ति, जन्म स्थान आदि के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया जाता। यहाँ गरीब के उत्थान का आशय उसके भौतिक कल्याण से है जबकि अमीर के उत्थान का तात्पर्य उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्थान से है।

सर्वोदय के इस अर्थ को स्पष्ट करते हुए *दादा धर्माधिकारी* कहते हैं कि सर्वोदय ऐसे वर्गविहिन, जातिविहिन, शोषणविहिन समाज की स्थापना करना चाहता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति समूह को अपने सर्वांगीण विकास के साधन एवं अवसर उपलब्ध होंगे। यह सत्य और अहिंसा के द्वारा ही संभव है। सर्वोदय इसी का पालन करता है।

पूर्ववर्ती सिद्धांतों से तुलना: सर्वोदय की धारणा अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन दोनों से तुलनात्मक, मात्रात्मक, गुणात्मक एवं भावनात्मक रूप से श्रेष्ठ है / व्यापक है।

- **मात्रात्मक रूप से श्रेष्ठता:** उपयोगितावाद के अनुसार *अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख* ही जीवन का चरम आदर्श है। यहाँ 'अधिकतर' शब्द संख्या को संकेत करता है जबकि सर्वोदय के 'सर्व' में सबका समावेश हो जाता है। इसमें अखंडता, समानता तथा अद्वैत का बोध होता है। पुन: उपयोगितावाद में अधिकतम के हित के लिए कुछ लोगों को साधन बनाया जा सकता है। सर्वोदय में यह असंभव है। मार्क्सवाद में केवल सर्वहारा वर्ग के हित की बात निहित है जबकि सर्वोदय में सबके हित की मंगलकामना निहित है।
- **गुणात्मक रूप से श्रेष्ठता:** बेंथम के उपयोगितावाद में सुखों में गुणात्मक भेद नहीं माना गया है। यहाँ भौतिक सुखों को वरीयता दी गई है। मार्क्स जीवन के आर्थिक पक्ष के उत्थान पर विशेष बल देते हैं जबकि सर्वोदय की अवधारणा में जीवन के सभी पक्षों के समग्र उत्थान की बात कही गई है। यहाँ भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक उत्थान का भाव भी विद्यमान है।
- **भावनात्मक रूप से श्रेष्ठता:** डार्विन मनुष्यों के मध्य संघर्ष को स्वाभाविक मानते हैं और योग्यतम के उत्तरजीविता या जीवन-रक्षा की बात करते हैं जबकि सर्वोदय में परस्पर सहयोग का भाव निहित है। यहाँ प्रेम, त्याग एवं अहिंसा के माध्यम से सबके कल्याण की बात कही गई है। **हक्सले** 'जियो और जीने दो' का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं परन्तु इससे मनुष्यों के बीच तटस्थता, उदासीनता एवं सहअस्तित्व मात्र का भाव उभरता है। जबकि सर्वोदय में प्रेम, सहयोग एवं सहअस्तित्व के साथ-साथ सह-सम्पन्नता का भाव भी विद्यमान होता है।

NOTES

NOTES

सुखवादी हॉब्स मनुष्य को स्वभावत: स्वार्थी मानते हैं जबकि सर्वोदय के विचार में गाँधी मनुष्य में ईश्वरीय अंश की विद्यमानता के कारण मूलत: अच्छा आदमी मानते हैं।

सर्वोदय के विभिन्न आयाम

सर्वोदय की अवधारणा के निम्नलिखित आयाम हैं- 1. आर्थिक पक्ष, 2. सामाजिक पक्ष, 3. राजनैतिक पक्ष, 4. धार्मिक पक्ष एवं नैतिक पक्ष

आर्थिक आयाम :

गाँधी सर्वोदय के आर्थिक पक्ष में निम्नलिखित बातों को शामिल करते हैं-

- गाँधी सर्वोदयी समाज में सभी व्यक्तियों के श्रम करने पर बल देते हैं ताकि उनका आर्थिक विकास सुनिश्चित हो सके तथा परनिर्भरता का भाव समाप्त हो सके। श्रम ही जीवन में गरिमा प्रदान करता है।
- गाँधी नाई एवं वकील दोनों के श्रम की कीमत एवं महत्ता को समान रूप से स्वीकार करते हैं। दोनों समान रूप से उपयोगी हैं, महत्वपूर्ण हैं। वस्तुत: गाँधी यह कहना चाहते हैं कि शारीरिक एवं बौद्धिक श्रम में सामाजिक एवं आर्थिक विभेद स्थापित नहीं होना चाहिए।

न्यास का सिद्धांत (ट्रस्टीशिप) (The Doctrine of Trusteeship)

गाँधी आर्थिक न्याय हेतु अर्थात् ***समाज में आर्थिक विषमता निवारण हेतु ट्रस्टीशिप की अवधारणा का समर्थन करते हैं अर्थात् धनी व्यक्ति अपनी संपत्ति के उतने ही भागों का उपयोग करेगा जितनी उसको आवश्यकता है तथा शेष संपत्ति को समाज की धरोहर मानकर उसका उपयोग समाज के हित में करेगा।*** आशय है कि वह अपनी अतिरिक्त संपत्ति का केवल संरक्षक के रूप में भूमिका का निर्वहन करेगा। ट्रस्टीशिप की इस अवधारणा के पीछे 'अपरिग्रह' (धन संग्रह न करना) की अवधारणा विद्यमान है। यहाँ यह भी मंतव्य निहित है कि 'सबै भूमि गोपाल की'। कहने का आशय है कि जिस प्रकार ईश्वर की वायु, जल, प्रकाश सबके लिए उपलब्ध हैं, उसी प्रकार भोजन, वस्त्रादि भी सबके लिए उपलब्ध होने चाहिए। भोजन एवं वस्त्रादि को अन्य व्यक्तियों के शोषण का साधन बनाना अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। इससे हिंसा एवं रक्तपात की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। अत: धनी व्यक्ति को अपनी अर्जित अतिरिक्त संपत्ति के अनावश्यक उपयोग का नैतिक अधिकार नहीं है।

उल्लेखनीय है कि साम्यवाद बल प्रयोग एवं हिंसात्मक कार्यवाही के माध्यम से पूँजीपतियों का विनाश कर उनकी संपत्ति का सामाजिक हित में उपयोग करने की बात करता है। पूँजीवाद उत्पादन एवं उपयोग पर पूँजीपति के स्वतंत्र स्वामित्व को स्वीकार करता है जबकि ***गाँधी आर्थिक समानता की स्थापना हेतु पूँजीवाद एवं मार्क्सवाद के भावात्मक पक्षों को स्वीकार करते हैं।*** गाँधी **उत्पादन के दृष्टिकोण से पूँजीवाद** एवं **वितरण के दृष्टिकोण से समाजवाद** की बात करते हैं। उनका कहना है कि यदि पूँजीपतियों का विनाश किया गया या उनकी संपत्ति का बलपूर्वक हनन किया गया तो फिर इससे-

- समाज में कटुता, वैमनस्य, घृणा एवं विद्वेष का भाव उत्पन्न होगा।
- बल प्रयोग द्वारा श्रमिक वर्ग सत्तारूढ़ होगा और बल प्रयोग से पूँजीपति के संपत्ति की संपत्ति का हरण करेगा तो इसमें उसके अन्दर बल प्रयोग एवं हिंसा की प्रवृत्ति की उत्पत्ति होगी।
- यदि बल प्रयोग द्वारा पूँजीपति का विनाश किया गया तो समाज ऐसे लोगों को खो देगा जिनमें धनोपार्जन की क्षमता एवं उत्पादन की विधियों का ज्ञान है।
- पूँजीपतियों के विनाश से सर्वोदय की अवधारणा पर आघात होगा। यहाँ उनके विनाश पर नहीं अपितु नैतिक विकास पर बल दिया जाता है।

इन्हीं कारणों के आधार पर गाँधी यह निष्कर्ष निकालते हैं कि सामाजिक हित में पूँजीपतियों का विनाश उचित नहीं है। यहाँ स्वभावत: यह प्रश्न उठता है कि यदि धनी व्यक्ति स्वेच्छा से अपने अतिरिक्त धन का उपयोग दूसरों के लिए (समाज के लिए) न करे तो फिर क्या किया जाए?

NOTES

गाँधी यहाँ इस संदर्भ में पूँजीपति को सही मार्ग पर लाने के लिए असहयोग, सत्याग्रह की बात करते हैं तथा इस क्रम में पूँजीपति के हृदय परिवर्तन के माध्यम से इस समस्या का निदान बताते हैं। चूँकि पूंजीपति में भी ईश्वरीय गुण (आत्मीय अंश) विद्यमान है, अतः उनमें परिवर्तन की संभावना भी विद्यमान है। गाँधी यह कहते हैं कि ईश्वरीय अंश होने के कारण ईश्वर प्रदत्त भौतिक सामग्री का समान उपयोग करने का सबको अधिकार है। अतः यदि कोई व्यक्ति अपनी अर्जित संपत्ति (अतिरिक्त संपत्ति) का उपयोग सामाजिक कार्यों में करता है तो यह उसके नैतिक कर्त्तव्य को दर्शाता है, दया भाव को नहीं। स्पष्ट है कि गाँधीजी ट्रस्टीशिप को नैतिक और भौतिक दो आधारों पर उचित ठहराते हैं–

1. **नैतिक आधारः** गाँधीजी के अनुसार सभी कुछ ईश्वर का है, सभी कुछ ईश्वर से ही प्राप्त होता है। अतः मनुष्य को उसमें से उतना ही उपभोग करने का अधिकार है जितनी कि उसे आवश्यकता है। आवश्यकता से अधिक जो भी अतिरिक्त सम्पत्ति है, उसे समाज की धरोहर समझकर उसका उपयोग समाज के हित में करना उचित है। ईश्वर ने प्रत्येक को जीने का अधिकार दिया है, अतः शक्तिशाली या पूँजीपति अधिकाधिक धन अर्जित करें और निर्धन धन के अभाव में भूखे-नंगे एवं अभावपूर्ण जीवन व्यतीत करें, यह अनुचित व असंगत है। अतः इस प्रकार ट्रस्टीशिप से धन-संपदा का न्यायोचित उपयोग संभव हो पाएगा।
2. **भौतिक आधारः** धन-संपत्ति का स्वामित्व, प्रबंधन एवं प्रशासन, कुशल सुयोग्य अनुभवी हाथों में बना रहेगा, जिससे उत्पादकता व लाभकारिता प्रभावित नहीं होगी। इस प्रकार नियंत्रण चाहे किसी का भी हो, उत्पादन और उससे होने वाले लाभ में सबकी आवश्यकतानुसार भागीदारी होगी। इस पद्धति से श्रमिकों एवं पूँजीपतियों के मध्य विषमता समाप्त होगी और जिसे मार्क्स वर्ग-संघर्ष कहता है, उसके लिए कोई कारण नहीं रहेगा।

लघु एवं कुटीर उद्योग पर गाँधी के विचार

गाँधी, भारतीय संदर्भ में जहाँ श्रम की प्रचुरता है वहाँ लघु एवं कुटीर उद्योग का समर्थन करते हैं। इससे सभी व्यक्ति स्वावलंबी बनकर भौतिक एवं व्यक्तिगत उत्थान सुनिश्चित कर सकते हैं। गाँधी का कहना है कि व्यापक मशीनीकरण के कई नकारात्मक परिणाम हैं–

- **व्यापक मशीनीकरणः** वृहद उत्पादन → खपत के लिए बाजार → उपभोक्तावादी प्रवृत्ति → साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का उदय → उपनिवेशवादी प्रवृत्ति का उदय।
- **व्यापक मशीनीकरणः** वृहद उत्पादन → केन्द्रीयकरण → शोषण, असमानता एवं विद्वेष को बढ़ावा
- **व्यापक मशीनीकरणः** श्रम की महत्ता घटेगी → बेरोजगारी बढ़ेगी
- **व्यापक मशीनीकरणः** मशीनों के साथ-साथ काम करते-करते संवेदना की कमी → यंत्रवत व्यवहार → नैतिकता एवं आध्यात्मिकता में बाधा

इसलिए गाँधी ऐसी उत्पादन प्रक्रियाओं के पक्ष में थे जो विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो। ऐसी औद्योगिक व्यवस्था हो जिसमें श्रमिक स्वयं स्वामित्व की भूमिका में हो।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि मार्क्स और नेहरू मनुष्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु व्यापक मशीनीकरण एवं वृहत उत्पादन का समर्थन करते हैं, वहीं गाँधी का कहना है कि हमें अपनी आवश्यकता को कम करना चाहिए। हमारी अनेक आवश्यकताएँ लोभ प्रेरित हो सकती है। इससे उपभोक्तावादी संस्कृति का प्रसार हो सकता है। भोगवाद को प्रश्रय मिल सकता है, साथ ही प्रकृति के अंधाधुंध शोषण की प्रवृत्ति बढ़ सकती है। उसमें व्यक्ति नैतिक एवं आध्यात्मिक रूप से कमजोर हो सकता है। अतः गाँधी आवश्यकता (उचित आवश्यकताओं) की पूर्ति की बात तो करते हैं किन्तु लोभ एवं संग्रह से प्रेरित इच्छाओं के निवारण का प्रयास करते हैं। गाँधी का यह कथन प्रसिद्ध है कि – ***''प्रकृति प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति तो कर सकती है किन्तु किसी एक व्यक्ति के लोभ को पूरा नहीं कर सकती है।''*** इस रूप में गांधी पर्यावरणीय नीतिशास्त्र की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। गांधीवादी अर्थव्यवस्था में उत्पादन का स्वरूप सामाजिक आवश्यकता द्वारा निर्धारित होगा, लोभ या व्यक्तिगत सनक के आधार पर नहीं।

सामाजिक विचार

गाँधी सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्यता के अन्त, सामाजिक एकता और न्याय की स्थापना, बुनियादी शिक्षा अथवा 'नई तालीम' के विस्तार पर बल देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का समन्वित एवं सर्वांगीण विकास करना है। गांधी *नई तालीम* में पढ़ाई के साथ-साथ समाजोपयोगी कार्यों को भी जोड़ना चाहते थे।

NOTES

गाँधी का वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी विचार

गांधी वर्ण व्यवस्था को हिंदू धर्म का अनिवार्य अंग मानते हैं। वे इसे 'धर्म का आविष्कार' तथा ''सत्य की निरंतर गवेषणा का परिणाम'' मानते है। गांधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आशय व्यवसाय मूलक विभाजन पर आधारित सामाजिक संगठन से है। 'हरिजन' में गांधी यह कहते है कि *"वर्ण धर्म का अर्थ है- हर एक को कर्तव्य के रूप में अपने पुरखों के आनुवंशिक व्यवसाय को वहां तक निर्वाह करना चाहिए जहाँ तक वह आधारभूत नैतिकता के विरूद्ध न हो।"*

गांधी के सामाजिक विचारों का आधार समानता है। इनके अनुसार सभी व्यक्ति समान हैं। अत: जाति, धर्म, व्यवसाय इत्यादि के आधार पर समाज में जो असमानता, ऊँच-नीच, उत्कृष्ट-निकृष्ट आदि का भाव निर्मित किया गया है वह कृत्रिम है। वह मनुष्य की अपनी इच्छापूर्ति या स्वार्थ पूर्ति का साधन है। आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है, जब ऊँच-नीच का यह भाव समाप्त हो।

सामाजिक संदर्भ में गांधी यद्यपि जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था के समर्थक हैं परंतु वे जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता (छुआछूत) आदि के विरोधी है। गांधी वर्ण-व्यवस्था को केवल व्यक्ति के आर्थिक जीवन व आजीविका प्राप्ति से सम्बधित करते हैं जिसमें ऊंच-नीच का स्थान नहीं है। गांधी की इस वर्ण-व्यवस्था में तीन बातें सम्मिलित हैं-

1. सभी कार्यों या व्यवसायों में समानता होनी चाहिए। इसमें श्रेष्ठता-निम्नता का भाव नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में धर्मों द्वारा बताये गये श्रेणीगत पदानुक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता।
2. वंशानुगत कार्य परम्परागत व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन व समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन समझ कर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में व्यक्ति को स्वधर्म का पालन निष्ठा के साथ करना चाहिए।
3. समाज में इस विचार का पालन करने के लिए विभिन्न कार्यों व व्यवसायों से प्राप्त होने वाले लाभों में अधिकाधिक समानता होनी चाहिए ताकि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी न आए। स्पष्टत: वर्ण-व्यवस्था की अवधारणा में कीमत एवं प्रतिष्ठा के संबंध में समरूपता पर जोर दिया गया है।

आचार्य विनोवा भावे ने गांधी के वर्ण-व्यवस्था का सार निम्न बातों में बताया है-

- सभी प्रकार के संघर्ष एवं प्रतियोगिता की समाप्ति हो।
- सभी कार्यों, उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए समान वेतन की व्यवस्था हो।
- सभी व्यक्तियों को वंशानुगत शक्तियों या योग्यता से लाभ उठाने के लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था हो।

गांधी के अनुसार वर्ण-व्यवस्था में सामाजिक कर्तव्यों के वर्गीकरण एवं श्रम विभाजन की बात निहित है। इसमें व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक समाज रचना का आधार निहित है।

गांधीजी निम्नलिखित कारणों से वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं–

(i) जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था से वंशानुगत व्यवसाय को परिष्कृत करने में आसानी होगी। पिता द्वारा प्राप्त अनुभव व योग्यता को प्राप्त कर पुत्र जीवन में सरलता से अग्रसरित हो सकता है व अपनी आजीविका की पूर्ति कर सकता है। सरलता से आजीविका की पूर्ति होने पर व्यक्ति अपने शेष समय का सदुपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति में कर सकता है।

(ii) मनुष्य द्वारा अपना पैतृक कार्य त्यागने पर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। इससे समाज में किसी कार्य विशेष के लिए प्रतियोगिता व संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप घृणा व विद्वेष की भावना बढ़ेगी, बेरोजगारी का विस्तार होगा। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था से आर्थिक जीवन में कटुता व प्रतियोगिता की समाप्ति होगी। व्यक्तिगत लाभ अर्जन करने का भाव समाप्त होगा।

(iii) वर्ण-व्यवस्था से सामाजिक संतुलन की स्थापना में मदद मिलती है। यह हिंदू धर्म की आंगिक एकता को इंगित करता है।

गांधी इस आंगिक एकता को दैवीय व प्राकृतिक मानते हैं। यह वंशानुगत कर्म नियम शाश्वत नियम है। इसमें ढांचागत परिवर्तन सम्भव नहीं है। यहाँ गांधी वर्ण-व्यवस्था को मानने के साथ-साथ यह भी मानते हैं कि सामाजिक महत्त्व एवं कीमत के दृष्टिकोण से सभी कार्य समान है। अत: किसी कार्य को छोटा या बड़ा नहीं समझना चाहिए।

गांधी के अनुसार वर्ण-व्यवस्था में विकृति का कारण कुछ पेशों तथा व्यवसायों को निम्न मानकर तथा कुछ को उच्च मानकर जातिगत विशेषताओं को उसमें स्थापित करना है। स्पष्टत: जब वर्ण-व्यवस्था में ऊँच-नीच का भाव आता है तो फिर जाति-भेद का रास्ता प्रशस्त होने लगता है। *यह जाति-भेद वर्ण-व्यवस्था में विकृति का परिणाम है।* गांधी के अनुसार वर्ण का सिद्धांत जाति का सिद्धांत नहीं है क्योंकि-

1. वर्ण-व्यवस्था नैतिक है जबकि जाति का सिद्धांत अनैतिक है।
2. वर्ण-व्यवस्था का सिद्धांत श्रम विभाजन पर आधारित है। यह सामाजिक कर्तव्यों के विभाजन व वर्गीकरण का सिद्धांत है जबकि जाति-व्यवस्था कृत्रिम है। यह समाज में विषमता व घृणा को बढ़ावा देती है। आदर्श समाज के निर्माण के लिए इसका विनाश आवश्यक है।
3. वर्ण चार है, जातियां अनेक हैं। जातियों में ऊँच-नीच, उत्कृष्टता-निकृष्टता का भाव विद्यमान है। इससे अस्पृश्यता को बढ़ावा मिलता है। सर्वोदयी समाज की रचना करने के लिए इसका उन्मूलन आवश्यक है।

निदान का उपाय

परम्परागत हिंदू समाज की संरचना में सुधार किया जाय, उसमें आयी विकृति को दूर किया जाय। इसके लिए गांधी निम्नलिखित उपाय करते हुए नजर आते हैं:-

1. सवर्णों का हृदय परिवर्तन
2. मंदिर प्रवेश
3. 'हरिजन' नाम देना - मनोवैज्ञानिक समर्थन
4. 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना
5. कथन- *''अगर मेरा पुनर्जन्म हो तो शूद्र के रूप में ताकि मैं उनका पूर्ण सुधार कर सकूँ। अगर नहीं हुआ तो हिंदू धर्म नष्ट हो जाएगा।''*
6. जाति भेद का प्रयोग कर विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपना हित संवर्द्धन किया है। अत: इनमें सुधार आवश्यक है।
7. गांधी शूद्रों के रहन-सहन के ढंग में भी सकारात्मक परिवर्तन चाहते हैं। उनके अनुसार वे मांस भक्षण, मदिरापान इत्यादि निकृष्ट कोटि के कार्यों से दूर रहें।

निदान क्यों जरूरी :

1. अस्पृश्यों के अलग होने पर सवर्णों और उनके बीच अंतर्जातीय संघर्ष की दूसरी या नयी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो जाएगी।
2. सामाजिक संतुलन व सामाजिक स्वास्थ की रक्षा हेतु।
3. हिंदू समाज की एकता को बनाए रखने के लिए।
4. हिंदू समाज को विनष्ट होने से बचाने के लिए।

स्त्रियों की स्थिति में सुधार : गाँधी स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षधर हैं। इनके अनुसार स्त्री मातृस्वरूपा होने के कारण मानवीय मूल्यों की संरक्षक है। इन्हें हेय दृष्टि से देखना पाप है। गाँधी पर्दा प्रथा, सती प्रथा, दहेज प्रथा, देवदासी प्रथा, बाल विवाह आदि स्त्रियों से संबंधित कुरीतियों का कड़ा विरोध करते हैं। वे पुरुषों की भाँति स्त्रियों की भी सामाजिक-राजनैतिक अधिकारों अधिकारों के पक्षधर हैं। गाँधी इसके अतिरिक्त मद्यपान निषेध, अस्पृश्यता निवारण आदि को भी सामाजिक उत्थान के लिए आवश्यक मानते हैं।

राजनैतिक पक्ष

राज्य के विषय में गाँधी के विचार अहिंसक अराजकतावादियों एवं **टालस्टॉय** से मिलते हैं। गाँधी के अनुसार राज्य हिंसा एवं पाश्विक शक्ति पर आधारित है। उनके अनुसार आधुनिक राज्य आत्मा के विकास में बाधक हैं। राज्य बाह्य नियंत्रण एवं प्रतिबंध का प्रतीक है। राज्य पुलिस बल, सैन्य शक्ति एवं अदालतों के माध्यम से अपनी बातों को नागरिकों पर थोपता है, दंड के भय एवं कानून की शक्ति से बाधित कर अच्छा कर्म करवाना चाहता है जिससे मनुष्यों की स्वतंत्रता पर प्रहार एवं व्यक्तित्व विकास में बाधा पहुंचती है। इसके परिणामस्वरूप नागरिकों का स्वतंत्र नैतिक एवं आत्मिक विकास नहीं हो पाता। उसमें आत्मविश्वास, स्वावलंबन, ईमानदारी आदि गुण स्वाभाविक रूप से विकसित

NOTES

नहीं हो पाते। गाँधीजी के शब्दों में -*''राज्य केन्द्रित एवं संगठित रूप में हिंसा का प्रतिनिधित्व करता है। व्यक्ति एक सचेतन आत्मवान् प्राणी है, किन्तु राज्य एक ऐसा आत्महीन यंत्र है जिसे हिंसा से नहीं बचाया जा सकता, क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही हिंसा से हुई है।''* इसलिए गाँधीजी थोरो के इस विचार का समर्थन करते हैं कि -*''सर्वोत्तम सरकार वह है जो सबसे कम शासन करती है।''*

गाँधीजी सर्वोदय के चरम आदर्श रूप में वे राज्यविहीन शासन की बात करते हैं। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का शासक उसकी आत्मा होती है। इस प्रकार सर्वोदय अपने विचारों के रूप में व्यावहारिक स्तर पर व्यक्तिवादी *(Individualistic)* दर्शन हो जाता है और आदर्श के दृष्टिकोण से अराजकतावाद (राज्य सत्ता का क्षय) को स्वीकार करता है।

परन्तु गाँधी वर्तमान परिस्थितियों में राज्य के उन्मूलन के पक्षधर नहीं हैं, क्योंकि मानव जीवन अभी इतना पूर्ण और नैतिक रूप से विकसित नहीं हो पाया है कि वह स्वयं संचालित हो। अत: वे वर्तमान परिस्थितियों में राज्य के अस्तित्व की बात तो करते हैं किन्तु वे इस संदर्भ में तीन सुझाव देते हैं-

(i) **सत्ता का विकेन्द्रीकरण:** गाँधीजी सत्ता के विकेन्द्रीकरण *(Decentralisation)* पर बल देते हैं। गाँधी का यह मानना है कि केन्द्रीयकरण की प्रवृत्ति से न केवल व्यक्तिगत स्वतंत्रता बाधित होती है, बल्कि असमानता, शोषण एवं अन्याय को बढ़ावा मिलता है। वे ***स्वराज्य*** की बात करते हैं। यहाँ स्वराज्य का अर्थ है- सभी प्रकार की पराधीनता से मुक्ति है। इसमें सरकार के नियंत्रण से मुक्त होने के सतत् प्रयास का भाव निहित है, चाहे वह सरकार चाहे विदेशी हो या स्वदेशी हो।

स्वराज का आशय है- 'आत्म शासन एवं आत्म नियंत्रण'। स्वराज राजनीतिक सत्ता का परिवर्तन या राजनीतिक स्वाधीनता की प्राप्ति मात्र नहीं है बल्कि इसमें समस्त बाह्य नियंत्रणों से मुक्ति का भाव विद्यमान है। इसके लिए आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने नैतिक कर्तव्यों का पालन स्वयं करें। चूंकि मानव में आत्मा के रूप में ईश्वरीय अंश उसके हृदय में विद्यमान है। अत: मानव अपनी इस दैवीय शक्ति के प्रति जागरूक हो इसके अनुरूप आचरण कर सकता है।

राजनीतिक क्षेत्र में इसका अभिप्राय है कि ग्राम पंचायतों को अपनी गाँवों के प्रशासन एवं प्रबंधन का समस्त अधिकार मिले। इसमें राजनीतिक एवं आर्थिक रूप से स्वावलंबी गाँव की भावना निहित है। इस रूप में गाँधी स्वतंत्र, आत्मनिर्भर ग्राम स्वराज्य की स्थापना की बात करते हैं।

(ii) **राज्य का कार्य क्षेत्र न्यूनतम हो:** गाँधी के अनुसार वही सरकार सर्वोत्तम है जो कम शासन करे। राज्य को व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए समुचित वातावरण तैयार करना चाहिए ताकि व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्यक् रूपेण विकास हो सके।

(iii) **राज्य की प्रमुखता का खंडन:** गाँधी राज्य की प्रमुखता का खंडन करते हैं। उनके अनुसार राज्य साधन रूप में हो साध्य रूप में नहीं। वे हीगल, हिटलर और मुसोलिनी की इस मान्यता को स्वीकार नहीं करते थे कि राज्य अपने-आप में एक साध्य है। इनके अनुसार राज्य एक साधन है तथा व्यक्ति और समाज का नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास साध्य है।

राम राज्य या धर्म राज्य

गाँधी का आदर्श ***'राम राज्य' (धर्म राज्य)*** है। राम राज्य किसी धर्म विशेष का राज्य नहीं है। राम राज्य आदर्श सामाजिक स्थिति या पवित्र व्यवस्था को इंगित करता है जहाँ व्यक्ति की अंतर्आत्मा बाह्य नियंत्रणों से पूर्णत: मुक्त होती है। यह आत्मा का शासन है, धर्म का राज्य अथवा न्याय और प्रेम का राज्य है। यह सही अर्थों में धरती पर ईश्वरीय राज्य है, इसमें कोई दुर्गुण नहीं है।

गाँधी मतानुसार राम राज्य ऐसी स्थिति होगी जिसमें व्यक्ति नैतिकता एवं अपनी अंतर्आत्मा के अनुसार सदैव सद् आचरण करेगा। इसके लिए कोई वाह्य बल या न्याय प्रणाली की आवश्यकता नहीं होगी। गाँधी जी ने इसे 'प्रबुद्ध अराजकता की स्थिति' कहा है। गाँधीजी कहते हैं कि *''अन्तत: मनुष्य प्रबुद्ध अराजकता की अवस्था में पहुँच जायेगा जहाँ प्रत्येक स्वशासित होगा। वह अपना आचरण स्वयं इस प्रकार नियमित करेगा कि वह कभी अपने पड़ोसी के मार्ग में बाधक नहीं होगा। अत: राज्य की आवश्यकता नहीं होगी। आदर्श राज्य में इसलिए कोई राजनीतिक सत्ता नहीं होगी क्योंकि राज्य ही नहीं होगा।''* गाँधीजी के रामराज्य की कल्पना थी कि एक ऐसा राज्य जहाँ नैतिकता पर आधारित जनता की संप्रभुता हो, जहाँ प्रत्येक अपना कर्त्तव्य समझता हो और उसका पालन करता हो। टालस्टॉय ने इसे ही *'पृथ्वी पर परमेश्वर का राज्य'* कहा था। यह आदर्श समाज पूर्णत: अहिंसक एवं शांतिमय होगा।

NOTES

धार्मिक पक्ष

गाँधीजी मूलतः एक आध्यात्मिक विचारक हैं। धर्म के संबंध में गाँधी का विचार नैतिक मूल्यपरक एवं मानवतावादी है, परन्तु गाँधी धार्मिक रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता एवं धर्मान्धता के विरोधी हैं। साथ ही वे धर्म के वाह्य ढाँचागत पक्ष या कर्मकांडीय पक्ष को विशेष महत्व नहीं देते थे। गाँधी के अनुसार धर्म मानव जीवन और समाज का आधारभूत तत्व है। धर्म के संदर्भ में अपने विचार को स्पष्ट करते हुए गाँधी कहते हैं कि धर्म से मेरा अभिप्राय औपचारिक या रूढ़िगत धर्म से नहीं है बल्कि उस धर्म से है जो सभी धर्मों की बुनियाद है। धर्म का अर्थ पंथ या संप्रदाय नहीं है बल्कि सभी धर्मों में अंतर्निहित मूल शाश्वत तत्व (दया, करूणा, प्रेम) से है, जो कि समस्त मानवों के कल्याण का हेतु है।

गाँधी का यह मानना है कि सभी प्रमुख धर्म कुछ समान मूलभूत विचारों पर आधारित है अर्थात् आंतरिक दृष्टि से सभी धर्मों में समान भाव है अर्थात् सभी धर्मों के मूल तत्व (दया, प्रेम, कल्याण, त्याग आदि) एकसमान हैं। धर्मों का महत्व इन आधारभूत नैतिक मूल्यों के संदर्भ में ही है। इसी रूप में गाँधी ***'सर्व धर्म समभाव'*** की अवधारणा को स्वीकार करते हैं। इस अवधारणा में सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव समाहित है।

वर्तमान समय में बहुलवादी समाजों में जहाँ नाना प्रकार के धर्मों, भाषाओं, बोलियों, जातियों के लोग एक साथ निवास करते हैं, वहाँ उनके मध्य एक प्रमुख समस्या यह उभरकर आ रही है कि आखिर किस प्रकार इनके मध्य पारस्परिक सौहार्द्र, प्रेम एवं सद्भाव स्थापित किया जाए? आखिर किस प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बियों के मध्य होने वाले संघर्ष, वैमनस्य, अविश्वास एवं तनाव को समाप्त किया जाए? सांप्रदायिकता एवं कट्टरता की बढ़ती प्रवृत्ति को कैसे रोका जाए। गाँधी इस संदर्भ में सर्वधर्म समभाव की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं।

सर्वधर्म समभाव

विभिन्न धर्मों के मध्य सामंजस्य एवं सौहार्द्र स्थापित करने तथा परस्पर वैमनस्य एवं सांप्रदायिकता की समस्या के समाधान के संबंध में एक उपाय यह हो सकता है कि हम अपने धर्म के साथ-साथ दूसरों के धर्मों का भी समान आदर करें। सत्य, अहिंसा एवं उदारता पर आधारित इस विचारधारा को गाँधीजी ने 'सर्वधर्म समभाव' की संज्ञा दी है। गाँधी द्वारा उल्लिखित एकादश व्रतों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, शारीरिक श्रम, अस्वाद, अभय, स्वदेशी, अस्पृश्यता निवारण और सर्वधर्म समभाव) में इसे ***एक अनिवार्य व्रत के रूप में*** स्वीकार किया गया है जिसका निष्ठापूर्वक पालन करना मनुष्यों के लिये अनिवार्य है। गाँधी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में सर्वधर्म समभाव के सिद्धान्त के अनुसार ही सदैव आचरण करना चाहिए। इस अवधारणा में सभी धर्मों को समान रूप से उत्कृष्ट एवं सम्माननीय माना जाता है। गाँधी अपने इस सर्वधर्म समभाव की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि *''अपने-अपने धर्म के सिद्धांतों के अनुसार आचरण करते हुए हमें एक-दूसरे के उत्तम सिद्धांतों को स्वीकार करना चाहिए और इस प्रकार ईश्वर तक पहुंचने के मानव-प्रयास में अपना योगदान देना चाहिए। मेरा अपना विचार यह है कि सभी महान धर्म मूलतः समान हैं। हमें दूसरे धर्मों का उसी प्रकार आदर करना चाहिए जिस प्रकार हम अपने धर्म का सम्मान करते हैं। मेरे विचार में विभिन्न धर्म एक ही उद्यान के सुंदर फूल तथा एक ही महावृक्ष की शाखाएँ हैं, अतः वे समान रूप से सत्य हैं। परन्तु वे समान रूप से अपूर्ण भी हैं, क्योंकि मनुष्य ही उन्हें ग्रहण करते हैं और उनकी व्याख्या करते हैं।''*

''विविध धर्म एक ही जगह पहुंचने वाले अलग-अलग रास्ते हैं। एक ही जगह पहुंचने के लिए हम अलग-अलग रास्ते लें तो इसमें दुःख का कोई कारण नहीं है। सच पूछो तो जितने मनुष्य हैं उतने ही धर्म भी हैं।''

स्पष्ट है कि गाँधी की सर्वधर्म समभाव की इस अवधारणा में न तो सभी धर्मों के समन्वय का आग्रह है और न ही किसी एक धर्म को सार्वभौम धर्म मान लेने का भाव। यहाँ इसकी स्पष्ट स्वीकृति है कि संसार में अनेक धर्म हैं जो पृथक-पृथक हैं और इनकी पृथकता बनी रहेगी। इसी कारण यह सिद्धान्त हमें बतलाता है कि हमें सभी धर्मों को समुचित महत्व देते हुए इन सबका समान रूप से आदर करना चाहिए। इसी से धार्मिक सहिष्णुता और उदार दृष्टिकोण का प्रसार होगा तथा विभिन्न धर्म के अनुयायियों के मध्य से वैमनस्य, कटुता, संघर्ष, कट्टरता इत्यादि को दूर किया जा सकता है। गाँधी से पूर्व विवेकानन्द ने भी सर्वधर्म समभाव की अवधारणा प्रस्तुत की थी।

'धार्मिक सहिष्णुता' में दूसरे के धर्मों को अच्छा न समझने पर भी उन्हें सहन करने का भाव विद्यमान है जबकि वास्तव में होना यह चाहिए कि हम सभी धर्मों को समान रूप से महत्वपूर्ण मानें, तभी उनके प्रति आदर-भाव आयेगा। इसीलिए गाँधीजी सर्वधर्म समभाव को प्रस्तुत करते हैं।

NOTES

गाँधी धर्मान्तरण का विरोध करते हैं। धर्म-परिवर्तन न नैतिक रूप से ठीक है और न ही आध्यात्मिक रूप से उपयुक्त है। उनके अनुसार जब सभी धर्मों में समान भाव है तो फिर एक धर्म छोड़कर दूसरे धर्म में प्रवेश निरर्थक है। इससे परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो सकता है। धर्मांतरण में यह दिखाने की कोशिश की जाती है कि व्यक्ति अपने जिस परंपरागत धर्म को छोड़ता है, वह असत्य है, निकृष्ट है। जबकि जिस नये धर्म में वह दीक्षित होता है, वह सत्य है, उत्कृष्ट है। गाँधी के अनुसार ऐसा विचार अविवेकपूर्ण एवं असंगत है। अविवेकपूर्ण इसलिए, क्योंकि ऐसा विचार रखने वाला व्यक्ति धर्म के वास्तविक मर्म को नहीं समझता। पुन: यह असंगत भी है, क्योंकि ऐसा विचार धर्म को एक 'मार्ग' या 'संप्रदाय' समझता है। जबकि धर्म का निहितार्थ उसका लक्ष्य (शांति, आनंद, सर्वोदय आदि) है तथा उत्पन्नित फल विराट मानवता है। गाँधीजी के अनुसार 'मार्ग' के रूप में धर्म सदैव अनेक रहेंगे, जबकि सभी धर्मों का लक्ष्य एक होगा। जो भी धर्म के संबंध में इन मूलभूत बातों को समझ लेता है, वह सदैव अपने धर्म के प्रति निष्ठा रखता है और अन्य धर्मों के प्रति भी सहिष्णुता और आदर-भाव रखने वाला हो जाता है। चूँकि सभी धर्म सत्य हैं तथा सभी धर्मों में कुछ दोष भी है, अत: मनुष्य को यह चाहिए कि वह अपने धर्म के सकारात्मक पक्ष के अनुसार आचरण करते हुए अन्य धर्मों के भी भावात्मक पक्षों में सहभागी बनें, उन्हें ग्रहण करे। गाँधीजी के अनुसार अन्य धर्मों के निन्दा करना और अपने धर्म की प्रशंसा करना एक हिंसात्मक आचरण है। सर्वधर्म समभाव की अवधारणा में इसका समर्थन है कि–

''सर्वे भवन्तु सुखिन:, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दु:ख भाग्भवेत्।''

धर्म और राजनीति

गाँधी के अनुसार चूँकि धर्म मानव का आधार है, अत: समस्त मानवीय गतिविधियाँ धर्म से प्रभावित हैं। इसमें राजनीति भी सम्मिलित है। अत: धर्म से राजनीति को पृथक करने का प्रयास अर्थहीन है। राजनीतिक गतिविधियों का आधार धर्म ही होना चाहिए। जब गाँधी धर्म को राजनीति का आधार बनाने की बात करते हैं तो इसका अर्थ किसी पंथ या संप्रदाय को राजनीतिक आधार बनाने से नहीं है बल्कि मानवजाति के उच्चतम मूल्यों एवं कर्त्तव्यों को आधार बनाना था। चूँकि धर्म नैतिक मूल्य स्वरूप है, अत: राजनीति में धर्म का समावेश आवश्यक है। *धर्मविहीन राजनीति, नीतिविहीन या नीति शून्य राजनीति होगी जो त्याज्य है, निंदनीय है।* चूँकि धर्म व्यक्ति और समाज के कल्याण का साधन है, अत: राजनीति धर्मविहीन नहीं हो सकती, क्योंकि राजनीति का लक्ष्य भी व्यक्ति और समाज के हितों की रक्षा करना, उसमें वृद्धि करना है। धर्मविहीन राजनीति वास्तव में नीतिविहीन राजनीति होगी। इससे आत्मा का हनन होगा।

वस्तुत: गाँधीजी राजनीति का सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिकरण करना चाहते थे। उनके अनुसार–*''मेरे लिए धर्मविहीन राजनीति महत्वहीन है। धर्मविहीन राजनीति नीति शून्य राजनीति होगी। नीति शून्य राजनीति सर्वथा त्याज्य है। राजनीति धर्म की अनुगामिनी है। धर्म से शून्य राजनीति एक मृत्युजाल है। क्योंकि इससे आत्मा का हनन होता है। धर्मविहीन राजनीति शव के समान है जो दफनाने योग्य है।''* गाँधीजी के अनुसार धर्म से रहित राजनीति ही विनाश और विध्वंश का कारण है।

यहाँ उल्लेखनीय है कि यद्यपि गाँधी राजनीति को धर्माधारित मानते हैं परन्तु वे धर्म-तंत्र या पंथ राजनीति के विरोधी हैं। वे न तो राज्य सत्ता पर धर्माचार्यों के नियंत्रण एवं प्रभाव की बात मानते हैं और न ही राज्य का संचालन किसी विशेष धर्म की मान्यताओं के अनुसार करने की बात करते हैं।

नैतिक पक्ष

इस संदर्भ में दो बातें हैं – **साधन एवं साध्य संबंधी विचार, अहिंसा का अर्थ एवं स्वरूप।**

साधन एवं साध्य संबंधी विचार: गाँधी फासीवादियों, नाजीवादियों एवं मार्क्सवादियों की इस अवधारणा का ***खंडन*** करते हैं कि ***साध्य साधन के औचित्य को निर्धारित करता है।*** इनके अनुसार यदि साध्य उचित हो तो फिर उसे प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के साधन का प्रयोग करना गलत नहीं है। कार्ल मार्क्स विषमता को समाप्त करने के लिए हिंसक क्रांति को भी नैतिक मानते हैं। गाँधी इनके विपरित साधन और साध्य (लक्ष्य) दोनों की श्रेष्ठता एवं पवित्रता की बात करते हैं। उनके अनुसार ***'साधन और साध्य में अवियोज्य संबंध है।'*** साध्य की प्रकृति साधन की प्रकृति से निर्धारित होती है। साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। यदि साधन अनैतिक है तो साध्य

NOTES

अपने अंतिम रूप में पथभ्रष्ट होने से नहीं बच सकता। कहा भी गया है- *'जो जैसा बोएगा, वैसा ही काटेगा'* इनके अनुसार जिस अनुपात में साधन का अनुष्ठान होगा उसी अनुपात में साध्य की प्राप्ति होगी। साध्य अपने आप में चाहे कितना भी पवित्र क्यों न हो, वह साधन को पवित्र नहीं बना सकता। गांधी के नैतिक दर्शन में साधनों की पवित्रता का आधारभूत स्थान है।

गाँधी के अनुसार ***''साधन बीज रूप है साध्य वृक्ष रूप''***। यही कारण है कि गाँधी साध्य की पवित्रता के साथ साधन की पवित्रता को भी स्वीकार करते हैं। स्वाधीनता संग्राम में गांधी ने इसी कारण अहिंसक सत्याग्रह का समर्थन किया। गाँधी के अनुसार- उत्पादन के साधन ऐसे हों जिससे सतत् विकास हो सके ताकि प्रकृति एवं वर्तमान मनुष्य तथा भावी पीढ़ी को सुरक्षित रखा जा सके।

यहाँ गाँधी मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नैतिक नियमों के पालन की बात करते हैं। इन नैतिक नियमों को यहाँ 'व्रत' कहा गया है। यहाँ **एकादश (11) व्रत** निर्धारित हैं। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, निर्भिकता, सर्वधर्म समभाव, स्वदेशी, शारीरिक श्रम एवं अस्पृश्यता निवारण।

गाँधी के दर्शन में सत्य एवं अहिंसा

सत्य: गाँधी का संपूर्ण दर्शन सत्य एवं अहिंसा के पवित्र स्तंभों पर टिका है। गाँधीजी की सत्य के प्रति असीम आस्था थी। यही कारण है कि उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम ***'सत्य के साथ मेरे प्रयोग'*** रखा। गाँधीजी सत्य के दो रूप मानते हैं- सापेक्ष सत्य तथा निरपेक्ष सत्य। गाँधीजी समय और परिस्थिति विशेष में आत्मा की आवाज, या अंतर्आत्मा की पुकार को सापेक्ष सत्य मानते हैं। ***हमें अपनी अन्तर्आत्मा की आवाज को सुनकर निर्मल हृदय से उस सच्चे और नैतिक मार्ग पर चलना चाहिए जिसके लिए हमारा अन्तःकरण हमें प्रेरणा देता है।*** प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में परमात्मा का पवित्र अंश आत्मा के रूप में विद्यमान है। इसलिए मनुष्य देवत्व का अंश है।

निरपेक्ष सत्य का अर्थ है- ईश्वर या परमात्मा। गाँधीजी कहते हैं कि 'सत्य ही ईश्वर है' तथा 'ईश्वर ही सत्य है'। यहाँ सत्य से उनका अर्थ उस निरपेक्ष सत्य से है जो सर्वव्यापी, सर्वकालिक, अजन्मा, अजर अमर है। निरपेक्ष सत्य से उनका आशय परम् ब्रह्म परमात्मा, सच्चिदानन्द से है। जिसकी संपूर्ण ब्रह्माण्ड में सत्ता है। एक वही तो पूर्ण सत्य है। यही शाश्वत, नित्य और सर्वशक्तिमान है। संपूर्ण विश्व सत्य की ही सत्ता पर निर्भर है। सत्य की खोज करना ही आत्मा का स्वभाव है। महात्मा गाँधी ने सत्य पर बहुत ही व्यापक अर्थों में प्रयोग किया है। हमें मन, वचन व कर्म से सत्य का पालन करना चाहिए। सत्य बोलना ही पर्याप्त नहीं है वरन् अपने संपूर्ण जीवन में हमें सत्य का पूर्णतया पालन भी करना चाहिए। सत्य का अर्थ यह नहीं है कि हम किसी को कटु सत्य के द्वारा दुःख व कष्ट पहुंचाएँ। अतः हमें प्रिय सत्य ही बोलना चाहिए। सत्य के साथ प्रेम, करुणा व मधुरता का व्यवहार होना चाहिए। हमारे जीवन का प्रत्येक पक्ष सत्य पर आधारित होना चाहिए। गाँधीजी ने ईश्वर को भी सत्य, प्रेम और अन्तःकरण या आत्मा कहकर पुकारा। अतः गाँधीजी के अनुसार राजनीति का उद्देश्य भी सत्य की साधना और सत्य की खोज करना है।

सत्य ही ईश्वर है

गांधी मतानुसार सत्य आध्यात्मिक परम मूल्य है। सत्य सदैव हमारे आचरण से प्रकट होना चाहिए। जीवन वस्तुतः सत्य के साथ प्रयोग है। सत्य ही सभी को एक सूत्र में बाधकर सार्वभौम रूप ग्रहण कर सकता है। प्रारंभ में गांधी ने ''ईश्वर सत्य है'' ऐसा कहा लेकिन बाद में इसे परिष्कृत करते हुए उन्होंने कहा कि सत्य ही ईश्वर है इसमें उद्देश्य और विधेय में पूर्ण तादात्म्य का बोध होता है। 'सत्य' शब्द में वैसी भिन्नताएं एवं मतभेद सूचित नहीं होती जैसी ईश्वर के संदर्भ में है। ईश्वर एक, अनेक, सगुण, निर्गुण, निमित्त, उपादान या दोनों हो सकता है किंतु सत्य एक ही है। पुनः ईश्वर पर बौद्धिक रूप से संशय संभव है जबकि सत्य पर संशय संभव नहीं है। सत्य आस्तिक एवं नास्तिक दोनों को समान रूप से स्वीकार्य होता है। अतः सत्य ही हमारा आदर्श, ध्येय व धर्म होना चाहिए। सत्य सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और शाश्वत होता है। सत्य ही वह शक्ति है जो समस्त अस्तित्ववान तत्वों का मूल आधार है। यह सत्य ही ईश्वर है। गांधी जी का कथन है-*'ईश्वर के असंख्य नामों में से यदि एक का चयन किया जाए तो वह सत्य ही होगा अतः सत्य ही ईश्वर है।* 'अतः सत्य की प्राप्ति ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। यह सदैव साध्य रूप में होता है। इसी संदर्भ में गांधी ने यह कहा कि सत्य ही ईश्वर है।

NOTES

अहिंसा : गाँधी ने सत्य की भाँति अहिंसा को भी शाश्वत नैतिक एवं आत्मिक बल के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार सत्य एवं अहिंसा अवियोज्य हैं। यहाँ अहिंसा साधन है सत्य साध्य। गाँधी के इस अहिंसा संबंधी विचार पर भारतीय दर्शन, टालस्टॉय एवं रस्किन आदि के विचारों का प्रभाव है फिर भी वे अहिंसा को एक नवीन मौलिक रूप में व्याख्यायित करते हैं। उनके अहिंसा सिद्धांत की दो विशेषताएँ हैं-

(i) अहिंसा के सामान्य अर्थ में परिवर्तन एवं विस्तार (ii) अहिंसा के अर्थ में विस्तार।

अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है हिंसा न करना। आशय है कि किसी जीवधारी को कोई कष्ट नहीं देना, उसकी हत्या नहीं करना। गाँधी इस अर्थ को स्वीकार करते हैं परन्तु वे इसे अहिंसा का संकीर्ण अर्थ मानते हैं। उनके अनुसार मन, वचन और कर्म से किसी का अमंगल न होने देना ही अहिंसा है। गाँधी अहिंसा के उपरोक्त अर्थ के साथ-साथ इसे भावात्मक संदर्भ में भी देखते हैं। उनके अनुसार अहिंसा अपने क्रियात्मक रूप में सभी जीवधारियों के प्रति सद्भावना का नाम है।

गाँधीजी ने अहिंसा के क्षेत्र एवं परिधि में भी विस्तार किया है। उनके अनुसार अहिंसा केवल व्यक्तिगत या पारिवारिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है अपितु संपूर्ण मानव समाज और उससे संबंधित परिवेश इसमें आ जाता है। अहिंसा का विस्तार व्यक्ति, समाज, प्रकृति एवं राष्ट्रों के स्तर तक है।

गाँधी के अनुसार अहिंसा का आधार मनुष्य का नैतिक एवं आध्यात्मिक बल है। अहिंसा आत्मिक बल की प्रतीक है। यह मानव का प्राकृतिक गुण है। मनुष्य स्वभावत: अहिंसाप्रिय है, क्योंकि मनुष्य की रचना ईश्वर ने अपने ही अनुरूप की है। मनुष्य के अंदर आत्मा रूप में ईश्वरीय अंश विद्यमान है। परन्तु मनुष्य अज्ञानतावश या परिस्थितिवश अपने स्वरूप को भूलकर हिंसक हो जाता है। इस हिंसक प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अहिंसात्मक पद्धति का प्रयोग आवश्यक है। अहिंसा में कठोर हृदय को भी पिघलाने की शक्ति है। इसमें हिंसक या अन्यायी व्यक्ति के चेतन शक्ति को जागृत कर उसका हृदय परिवर्तित किया जा सकता है। स्पष्ट है कि मानव और समाज में परिवर्तन रक्तपूर्ण क्रांति से नहीं बल्कि अहिंसात्मक पद्धति से संभव है।

कभी-कभी अहिंसा का अर्थ बुराई को न रोकना या अत्याचार के सामने झुक जाना आदि समझा जाता है। किन्तु अहिंसा का वास्तविक आशय यह नहीं है। अहिंसा में वास्तव में किसी भी स्थिति अथवा किसी भी रूप में बुराई के सामने झुकने या समर्पण का भाव नहीं होता। इसमें सदैव आत्मिक बल के आधार पर बुराई के प्रतिरोध का आदेश होता है।

वस्तुत: अहिंसा की दो अवस्थाएँ हैं- (i) नकारात्मक अहिंसा और (ii) सकारात्मक अहिंसा

अगर हम विरोधी या अत्याचारी से भयभीत होकर अहिंसक बने रहें तो यह नकारात्मक अहिंसा है। इसे अहिंसा न कहकर कायरता कहना चाहिए। सकारात्मक अहिंसा का जन्म भय से नहीं अपितु आत्मिक बल से होता है। हम सच्चे अर्थों में अहिंसक तभी हो सकते हैं जब हिंसा कर सकने की स्थिति में होने पर भी हम ऐसा न करें। स्पष्ट है कि ***'हिंसा वीरों का भूषण है।'*** राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने भी कहा है कि ***'क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत सरल हो।'***

कायरता को अहिंसा की ओट में छिपाना घृणित है। गाँधी का यह कथन है कि यदि कायरता एवं हिंसा में से किसी एक को चुनना पड़े तो हिंसा का चुनाव उचित होगा क्योंकि हिंसा करने वाले व्यक्ति में साहस होता है जबकि कायर में यह गुण भी नहीं होता। कायरता विवशता एवं दुर्बलता से उत्पन्न होती है। कायर व्यक्ति को अहिंसा का उपदेश भी नहीं दिया जा सकता जैसा कि एक नेत्रहीन व्यक्ति को किसी सुंदर दृश्य का आनंद लेने के लिए नहीं कहा जा सकता। स्पष्ट है कि अहिंसा कायरता का परिचायक नहीं है क्योंकि अहिंसा में नैतिक एवं आध्यात्मिक बल निहित होता है।

गाँधी यद्यपि सामान्य परिस्थितियों में अहिंसा के पालन को अपरिहार्य मानते हैं किन्तु कुछ परिस्थितियों में इसके त्याग को वांछनीय कहते हैं। उनके अनुसार दैनिक जीवन के संचालन में कुछ हिंसा का होना आवश्यक है। अनिवार्य अहिंसा जैसे- कृषि आदि अनुचित नहीं है। ***सद्भावना प्रेरित हिंसा को हिंसा की श्रेणी में नहीं रखा जाता।*** फसलों को नष्ट करने वाले कीटाणुओं, रोग फैलाने वाले कीटाणुओं आदि को मारना उचित है।

उनके अनुसार ऐसी स्थितियाँ अपवाद स्वरूप ही आती हैं। अहिंसा के संदर्भ में उनकी अवधारणा आशावादी एवं यथार्थवादी दोनों हैं। गाँधी स्वयं को एक व्यावहारिक आदर्शवादी कहते हैं।

गाँधी के अनुसार ***अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का समाधान*** भी अहिंसा द्वारा ही हो सकता है। राष्ट्रों के मतभेद युद्ध द्वारा नही सुलझाये जा सकते। युद्ध करना खुली हिंसा है। हिंसा सदैव हिंसा को जन्म देती है। अत: एक युद्ध अगले

युद्ध की भूमिका तैयार करता है। इसलिए शान्ति स्थापना के लिए युद्ध छेड़ना हास्यास्पद है। अहिंसा से ही अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं का दीर्घकालिक एवं स्थायी समाधान निकल सकता है।

अहिंसा ईश्वरीय नियम है। यह एक ईश्वरीय नियम है कि आत्मबल, पशुबल पर विजयी होता है। अहिंसा आत्मबल है। हिंसा पशुबल है। ईश्वरीय विधान के अनुसार आत्मबल निश्चित रूप से पशुबल पर विजयी होता है।

पशुबल का प्रयोग विरोधी में पशुबल को उत्तेजित करता है। किन्तु यदि पशुबल के विरोध में आत्मबल का प्रयोग किया जाए तो यह निश्चित है कि विरोधी में आत्मबल जाग उठेगा और वह पशुबल का परित्याग कर देगा।

सहअस्तित्व एवं हिंसा

सहअस्तित्व का तात्पर्य है कि दो पक्षों में मतभेद के होते हुए भी एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता *(Tolerence)* का बर्ताव। सहअस्तित्व केवल साथ-साथ जीवन व्यतीत करना मात्र नहीं है। पुन: इसका आशय 'मतभेदों का अभाव' या 'मतभेदों का अन्त' भी नहीं है। परस्पर विरोध के बावजूद भी शांतिपूर्वक जीवन व्यतीत करना ही सहअस्तित्व है। सहअस्तित्व का आदर्श यह मानता है कि प्रत्येक मनुष्य के अधिकार का मूल्य समान होता है। सामाजिक जीवन में इसका व्यावहारिक रूप इस रूप में उभरकर सामने आता है कि "अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए अन्य व्यक्तियों के अधिकारों का सम्मान करना।" स्पष्ट है कि सहअस्तित्व इस रूप में अहिंसा की प्रागपेक्षा करता है।

नैतिक जीवन में सहअस्तित्व की अवधारणा **सहजीवन** के रूप में दिखाई देती है। ***नैतिकता की यह माँग है कि जो व्यवहार हम खुद चाहते हैं वही दूसरों से भी करें।*** सामाजिक विकास के लिए यह आवश्यक है।

इस प्रकार सहअस्तित्व की अवधारणा व्यक्तिवाद, स्वार्थवाद, संकुचित दृष्टिकोण आदि का विरोध करती है, क्योंकि सामाजिक विकास की धारा में ये बाधक हैं।

प्राय: यह माना जाता है कि हिंसा ही सहअस्तित्व का आधार है। इस हिंसा को अपनाकर ही विभिन्न व्यक्ति समाज के अन्दर अपनी उपस्थिति बनाये रखते हैं। विभिन्न राज्य भी इसी हिंसा के जरिये अपनी आन्तरिक शासन व्यवस्था को भी संचालित करते रहे हैं।

पश्चिमी विचारकों में डार्विन, मार्क्स, नीत्से, **जॉर्ज सॉरेल** एवं हिटलर के नाजीवाद, मुसोलिनी के फांसीवादी सिद्धान्तों में हिंसा को महिमामण्डित किया गया है।

डार्विन की - योग्यतम की उत्तरजीविता का सिद्धान्त, हिटलर की युक्ति - जिसे जीना होगा, उसे युद्ध करना होगा, मार्क्स का - वर्ग संघर्ष एवं क्रांति का सिद्धान्त, नीत्से का - अतिमानव का सिद्धान्त तथा समकालीन युग में जॉर्ज सॉरेल का- "संरचनात्मक बल प्रयोग रूपी हिंसा का सिद्धान्त" प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है।

गाँधीजी का विचार

इन समस्त विचारकों के विरूद्ध गाँधी एक महत्वपूर्ण विचारक हैं जो जैन ग्रंथों से प्रेरणा लेते हुए 'अहिंसा परमोधर्म:' का उद्घोष करते हैं। इनका मानना है कि ***"हिंसा पशुओं का प्राकृतिक नियम है एवं अहिंसा मनुष्य का स्वाभाविक गुण है।"*** गाँधी का मानना है कि अहिंसा समग्र रूप में या पूरे समाज के लिये वैसे ही जरूरी है जैसे किसी एक व्यक्ति के लिये।

गाँधी के अनुसार अहिंसा के दो रूप हैं -

(i) *नकारात्मक* - मन, वचन एवं कर्म तीनों से हिंसा नहीं करना।

(ii) *सकारात्मक* - प्रेम, दया, करूणा का भाव विकसित करना।

गाँधी का मानना है कि हिंसा कभी भी सह-अस्तित्व के रूप में सार्वभौमिक रूप नहीं ले सकती, क्योंकि यदि सभी व्यक्तियों द्वारा इसे अपना लिया जाए तो पूरे समाज एवं व्यक्ति का समूल नाश हो जायेगा। अर्थात् हिंसा कुछ सक्षम लोगों का ही हथियार/साधन है। जबकि अहिंसा सार्वभौमिक रूप से अपनाई जा सकती है। इसमें किसी भी विरोध की स्थिति नहीं उत्पन्न होगी। आत्म रुप में ईश्वरी अंश होने के कारण व्यक्ति मूलत: अच्छा व्यक्ति होता है। मनुष्य स्वभाव से ही करूणा, दया भाव रखता है एवं अहिंसक होता है। अत: अहिंसा के माध्यम से उसके हृदय को संस्पर्श कर किसी का मत बदल सकते है तथा विचारों एवं तर्कों से समझा कर उसकी मान्यताओं एवं सोंच में परिवर्तन कर सकते है। हिंसा मनुष्य का नहीं अपितु पशुता का द्योतक है। इसी आधार पर गाँधी ने अहिंसा को व्यक्तिगत स्तर से

NOTES

ऊपर उठाते हुए इसे संस्थागत रूप प्रदान किया। अर्थात् समाज एवं राज्य के अस्तित्व के लिये भी अहिंसा को आवश्यक मूल्य के रुप में स्थापित करते है। गाँधी के पूर्व के विचारकों का मानना था कि अहिंसा व्यक्तिगत स्तर पर ही पालित हो सकती है। समाज, राष्ट्र एवं विश्व हिंसा पर ही अवलम्बित है, किन्तु गाँधी इसका विरोध करते हैं। उनके अनुसार अहिंसा का पालन सार्वभौम स्तर पर (समाज एवं राष्ट्र के स्तर पर) आवश्यक है ताकि सहअस्तित्व की भावना को सकारात्मक रूप से समाज में स्थापित किया जा सके।

यहाँ उल्लेखनीय है कि गाँधी का अहिंसा विचार जैनियों के अहिंसा से कुछ मायनों में भिन्न है। गांधी अनिवार्य हिंसा को स्वीकार करते हैं, किन्तु जैन निरपेक्ष अहिंसा को दीर्घकालिक समाज का आधार मानते हैं।

गाँधीजी का हिंसा संबंधित विचार

गाँधीजी के अनुसार हिंसा पशुओं का प्राकृतिक स्वभाव है। जबकि अहिंसा मानव जाति का नियम है। हिंसा से गाँधीजी का आशय केवल हत्या करना या कष्ट देना मात्र नहीं बल्कि प्रत्येक शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं विषमता में हिंसा व्याप्त है। उनके अनुसार वर्तमान की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक व्यवस्था हिंसा पर आधारित है। राज्य के पास जो दण्ड शक्ति है, वह भी हिंसा का ही रूप है। इस दण्ड शक्ति के आधार पर कोई स्थायी नैतिक समाज बनाना या मूलभूत सामाजिक परिवर्तन लाना संभव नहीं है।

स्थायी, सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन के लिए वैचारिक क्रांति की आवश्यकता है। इसके लिए जनता के आत्मबल, नैतिक बल एवं कर्त्तव्य-शक्ति को जाग्रत करना होगा।

मार्क्सवादी जहाँ सामाजिक, राजनैतिक परिवर्तन हेतु सामान्यतः हिंसक क्रांति की बात करते हैं, वहीं गाँधीजी का कहना है कि ***क्रांति के साथ हिंसा का मेल नहीं है।*** क्रान्ति का अर्थ आमूल-चूल परिवर्तन है। क्रान्ति यदि हमारी मान्यताओं, आदर्शों एवं आकांक्षाओं में आधारभूत परिवर्तन को माना जाए तो इसे बल प्रयोग या हिंसा के माध्यम से नहीं पाया जा सकता, क्योंकि-

1. इससे मानवीयता का ह्रास होता है। समाज में कटुता व वैमनस्यता पैदा होती है।
2. हिंसा से क्रान्ति करने पर *अनावस्था* दोष की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी।
3. हिंसा प्रतिहिंसा का दौर शुरू हो सकता है। पुन: हिंसा के द्वारा यदि कोई सुन्दर कार्य हो भी जाता है तो वह अस्थायी होता है। परन्तु जो अहित होता है, वह चिरस्थायी होता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिंसा का प्रयोग करने वाले स्वयं हिंसा की आग में जल जाते हैं।
4. मानवीय सभ्यता के विकास के इस सोपान पर बर्बरता या हिंसा शोभा नहीं देती। हिंसक युद्ध, मत्स्य-न्याय या जंगल कानून के समान है।

गाँधीजी का मानना है कि सच्चे अर्थों में अहिंसक बनने के लिए जनतांत्रिक बनना न्यूनतम शर्त है और सच्चे रूप में जनतांत्रिक दृष्टि के लिए अहिंसक दृष्टि आवश्यक है। हिंसा से जनतंत्र का मेल नहीं हो सकता, क्योंकि–

- हिंसा जहाँ दण्ड शक्ति में विश्वास करती है, वहाँ जनतंत्र विचार शक्ति में आस्था रखता है।
- हिंसा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का शत्रु है, जबकि जनतंत्र की सारी बुनियाद उसी पर है।
- हिंसा वोट में नहीं चोट में विश्वास करती है, जबकि जनतंत्र के लिए वोट या जनमत ही सार-सर्वस्व है।
- हिंसा नियम एवं कानून का निषेध है, जबकि जनतंत्र का आचार ही विधि का शासन *(Rule of Law)* है।
- हिंसा शक्ति किसी विशेष व्यक्ति या गुट के अधीन रहती है और उसी की इच्छा प्रभावकारी होती है, जबकि जनतंत्र में सामान्य जन-इच्छा की ही संप्रभुता है।

इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि जितनी हिंसा होगी, उतनी ही कम स्वतंत्रता, समानता और न्याय की प्राप्ति होगी। जो कि जनतंत्र के मूल में नहीं है। अत: हिंसा की अवधारणा का सहअस्तित्व के साथ सकारात्मक मेल नहीं है।

सत्याग्रह

गाँधीजी सर्वोदयी समाज की स्थापना के लिए पवित्र साधनों को स्वीकार करते हैं। यहाँ सर्वोदय के साधन के रूप में सत्य और अहिंसा पर आधारित सत्याग्रह, योग पर आधारित साधना, चितशुद्धि इत्यादि को स्वीकार करते हैं। ***गाँधीजी सत्य-अहिंसा, साधन-साध्य की श्रेष्ठता एवं व्यक्ति की नैतिक पवित्रता में विश्वास करते थे। इन्हीं विश्वासों के***

आधार पर बुराई के प्रतिरोध हेतु एक नया मार्ग प्रस्तुत किया जिसे सत्याग्रह कहा जाता है। सत्याग्रह दो शब्दों पर आधारित है- सत्य और आग्रह।

यहाँ 'सत्य' सच्चाई का प्रतीक है जबकि 'आग्रह' से नैतिक बल, आत्मबल, प्रार्थना, आस्था इत्यादि का बोध होता है। आशय है कि- ***सत्याग्रह सत्य की विजय हेतु किये जाने वाले आध्यात्मिक एवं नैतिक संघर्ष का नाम है। इसमें अहिंसा के माध्यम से असत्य पर आधारित बुराई का विरोध किया जाता है।*** इसमें अहिंसा का अनुपालन मौलिक सिद्धान्त और आदेश के रूप में किया जाता है, अपनी दुर्बलता के कारण नहीं। गाँधीजी को यह विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर सत्यानुभूति की संभावना विद्यमान है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के अंदर आत्मा रूप में ईश्वरीय अंश विद्यमान है। इसी कारण मानव मूलतः नैतिक होता है परन्तु परिस्थितिवश एवं अज्ञानवश वह दुर्गुणों एवं अनैतिक आचरण को अपनाता है। इसीलिए गाँधीजी यह कहते हैं कि- *''विरोध अनैतिकता या पाप का होना चाहिए, अनैतिक व्यक्ति या पापी का नहीं।''*

गाँधी सत्याग्रह के माध्यम से दुराचारी, पापी या अत्याचारी के हृदय परिवर्तन की बात करते हैं। इसमें अन्यायी को अंदर से यह महसूस कराया जाता है कि उसका मार्ग असत्य एवं बुराई का मार्ग है। ज्यों ही उसे इस तथ्य का पता चलता है, बुराई का परित्याग कर देता है। यहाँ गाँधी विरोधी को डांटकर, अपमानित कर या दुःखी बनाने के बजाए स्वयं को दुःख या कष्ट में डालकर विजय प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। सत्याग्रह में एक ओर सत्य का आग्रह है तो दूसरी ओर प्रेम की शक्ति। प्रेम और सत्य के कई लाभ हैं। प्रत्येक हिंसात्मक संघर्ष अपने पीछे कटुता एवं विनाशता को छोड़ जाता है। इससे हिंसा-प्रतिहिंसा की अनवरत प्रक्रिया शुरू हो सकती है। परन्तु प्रेमाधारित सत्याग्रह की पद्धति में कटुता एवं वैमनस्य दूर होते हैं एवं परस्पर सहयोग, त्याग एवं सद्भावना का विस्तार होता है। इसका दोहरा लाभ है-

(i) इससे प्रतिपक्षी की आत्मा शुद्ध हो जाती है। वह अपने दोषों एवं दुर्गुणों को जानकर उनका परित्याग कर अपना आत्म-विकास करता है।

(ii) वह स्वेच्छापूर्वक नई सामाजिक व्यवस्था में सहायक होता है। इससे दूसरों को भी लाभ होने लगता है।

स्पष्ट है कि सत्याग्रह एक अहिंसक क्रांति है जिसका मूल तत्व है हृदय परिवर्तन द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाना। इसमें अत्याचारी का नये मानव के रूप में उदय होता है और वह समाज के निर्माण में सहयोगी बन जाता है। अहिंसा पर अटल रहने की पद्धति सत्याग्रह है जिसका उद्देश्य मात्र एक नई सामाजिक संरचना करना नहीं है बल्कि एक नया मानव बनाना है।

सत्याग्रह वस्तुतः शासन, शक्ति और सत्ता के प्रतिरोध का एक लोकतांत्रिक उपाय है। यह केवल परिवर्तन की नहीं बल्कि ***रचनात्मक परिवर्तन लाने का एक उपाय*** है। इसके उपयोग से राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में रचनात्मक परिवर्तन संभव है। इसके माध्यम से परस्पर तनाव को खत्म किया जाता है, व्यवहार में परिवर्तन लाया जाता है, तनाव से ग्रस्त सभी पक्षों की आवश्यकताओं की पूर्ति को संभव बनाया जाता है। इस प्रकार गाँधी के दर्शन में यह ***सत्याग्रह क्रांति की विधि*** है। सत्याग्रह का सहारा तभी लिया जाना चाहिए जब सभी प्रकार के संवैधानिक उपाय असफल हो गए हों।

सत्याग्रह का सही एवं सफल प्रयोग वही कर सकते हैं जिनमें निम्नलिखित गुण हों-

- ईश्वर में अटूट आस्था
- आत्मसंयमित
- आत्मबल से युक्त
- सत्य पर निरंतर दृढ़तापूर्वक चलने वाला
- आत्म-अनुशासित (धैर्यवान, सहिष्णु)
- मन, वचन, कर्म से अहिंसक होना

हिन्द स्वराज्य में गाँधी ने सत्याग्रह के लिए 11 व्रतों का पालन आवश्यक बताया है- असहयोग, हिजरत (स्थान परिवर्तन), सविनय अवज्ञा, अनशन, हड़ताल, उपवास आदि।

यहाँ उल्लेखनीय है कि सत्याग्रह एक राजनीतिक हथियार नहीं है बल्कि जीवन के संपूर्ण दर्शन का एक प्रमुख भाग है। गाँधी मानते हैं कि मानव जीवन का चरम लक्ष्य है - सत्य का अन्वेषण। सत्याग्रह इसी अन्वेषण का एक रूप है। इस संदर्भ में सत्याग्रह का 'सत्य' शब्द ईश्वर का पर्यायवाची है और 'आग्रह' शब्द आस्था को इंगित करता है अर्थात् सत्याग्रह में ईश्वरीय आस्था का भाव भी निहित है।

गाँधीजी की मृत्यु के पश्चात भारत में सर्वोदयी विचारधारा को आचार्य विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण आदि ने मूर्त्त रूप देने का प्रयास किया।

NOTES

सर्वोदय की कमियाँ

सर्वोदय एक महान आदर्श *(Great Ideal)* है। इस अवधारणा में सर्वमंगल की कामना निहित है, फिर भी सर्वोदय के व्यावहारिक पक्ष में कठिनाईयाँ हैं-

- गाँधीजी का ऐसा मानना है कि मनुष्य मूलत: अच्छा आदमी होता है। इस आधार पर वे हृदय परिवर्तन की बात करते हैं, किन्तु उनकी यह मान्यता व्यावहारिक रूप से वांछनीय परिणाम दिलाने में असमर्थ है।
- सर्वोदय की अवधारणा में परस्पर विरोध एवं अस्पष्टता विद्यमान है। यहाँ एक तरफ तो राज्य का विरोध किया गया है तो दूसरी ओर वर्तमान परिस्थितियों में उसकी प्रासांगिकता को भी स्वीकार किया गया है। पुन: यहाँ एक तरफ पूँजीवाद का समर्थन है तो उपभोग के स्तर पर इसका विरोध भी है।
- सर्वोदय की सफलता हेतु उच्च आदर्शों एवं नैतिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है जिसका प्राय: अभाव रहा है।
- सर्वोदयी विचारधारा का निर्माण कृषि एवं सामंती प्रधान अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर किया गया था किन्तु स्वतंत्रता के पश्चात् जिस मध्यम वर्ग का उदय हुआ उस पर औद्योगिकरण का प्रभाव था। वह इन लक्ष्यों एवं आदर्शों के प्रति उदासीन रहा।
- अनिश्वरवादी व्यक्ति के लिए सर्वोदय की अवधारणा को स्वीकार करना कठिन है।
- मनुष्य के स्वार्थ उतने कमजोर नहीं होते जितना गाँधी सोचते थे। मनुष्य की बौद्धिकता के विकास के क्रम में उसका स्वार्थ पक्ष और मजबूत हो रहा है।
- भूदान से प्राप्त जमीन का न तो समुचित वितरण हो पाया और न ही इसका सार्थक उपयोग हुआ। कालांतर में इसके नकारात्मक परिणाम निकले।
- वर्तमान समय में अहिंसा, सत्याग्रह के नाम पर अनशन, हड़ताल, विरोध इत्यादि करके विरोधी को झुकाने एवं अपनी बात मनवाने पर जोर दिया जा रहा है। इस क्रम में अहिंसा की आड़ में हिंसा का ही उपयोग किया जा रहा है।
- इस अवधारणा में व्यावहारिता का अभाव है। इसमें भावनात्मकता आध्यात्मिकता का वर्चस्व है।
- वस्तुत: अहिंसात्मक पद्धति का उपयोग करने वाला भी गाँधी के समान होना चाहिए, किन्तु ऐसा होना कठिन है।

महत्व एवं प्रासांगिकता

सर्वोदय आदर्श समाज का एक वैकल्पिक ढाँचा प्रस्तुत करता है। यद्यपि इस आदर्श को पाया नहीं जा सका है। इसे पाना कठिन भी है, फिर भी इस आदर्श की पवित्रता एवं उत्कृष्टता हमें इसकी ओर बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। भविष्य के लिए यह आदर्श मार्गदर्शक हो सकता है।

- इसमें विद्यमान तत्वों जैसे- सर्वधर्म समभाव, अस्पृश्यता निवारण, विकेन्द्रीकरण, एकादश व्रत, आवश्यकताओं को कम करने की बात, नैतिक आचरण इत्यादि की प्रासांगिकता अभी भी बनी हुई है।
- सर्वोदय आदर्श समाज का एक वैकल्पिक रूप प्रस्तुत करता है। यद्यपि इस आदर्श को पाया नहीं जा सका है, पाना कठिन है, फिर भी इस आदर्श की उत्कृष्टता एवं पवित्रता इस ओर बढ़ने के लिए उत्प्रेरित करती है। भविष्य के लिए यह आदर्श प्रेरणादायी हो सकता है।
- सर्वोदय पूँजीवाद एवं समाजवाद को जोड़ने का काम करता है। यह उत्पादन की दृष्टि से पूँजीवाद एवं वितरण की दृष्टि से समाजवाद को स्वीकार करता है।
- सत्याग्रह की संकल्पना युद्ध, संघर्ष एवं क्रांति का बेहतर विकल्प बन सकता है। यह मनुष्य को उच्चतर जीवन लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ-साथ राजनीतिक एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं के दीर्घकालिक समाधान का उपाय प्रदान करता है। एक नेता एवं सुधारक के रूप में गांधीजी की यह एक अनुपम देन है।
- गांधी ने भारतवर्ष में संगठित एवं निर्भिक होकर अन्याय के विरूद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा और क्षमता दी।
- सर्वोदय की अवधारणा विश्वव्यापी शांति, नि:शस्त्रीकरण एवं प्रकृति के प्रति सतत् सहयोग का समर्थन करता है जो समाज के लिए हितकारी है।

- सर्वोदय आर्थिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की बात करता है। स्वतंत्र भारत में ग्राम पंचायत की स्थापना सर्वोदय के ही एक अंश के व्यावहारिक परिणति को इंगित करता है।
- सर्वोदय भारतीय दर्शन के आध्यात्मिक चरित्र एवं अद्वैतवादी मत को व्यावहारिक धरातल प्रदान करता है।
- सर्वोदय में पश्चिम के भौतिकवाद एवं पूरब के आध्यात्मवाद का समन्वय दिखाई देता है।
- **सर्वोदय की महत्ता एवं इसकी प्रासांगिकता विनोबा भावे के इस कथन में दिखायी देती है**- *"आज नहीं तो कल दुनिया को अहिंसा का मार्ग अपनाना ही होगा, आज जो हमारे साथ नहीं हैं, वे कल हमारे साथ अवश्य आयेंगे। एक ऐसा जमाना आयेगा कि सारे समाज को शांति की प्यास लगेगी और सारा जमाना सोचेगा कि शांति में ही समस्या का निदान है। शांति में ही शक्ति है। सारा समाज न भय के कारण, न लोभ के कारण, बल्कि प्यास की पूर्ति के लिए शांति चाहेगा तथा तब 'सर्वोदय' होगा।"*

वस्तुतः सत्य और अहिंसा के जिस मुख्य हथियार का गाँधीजी ने प्रयोग किया, आज सिर्फ भारत को ही नहीं, अपितु सारी दुनियां को इसकी आवश्यकता है। सत्य और अहिंसा के माध्यम से ही राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण दीर्घकालिक समाधान हो सकता है।

गांधी ने अपने सत्याग्रह आंदोलनों द्वारा आम लोगों को जागरूक कर असत्य, अन्याय, अनौचित्य तथा भेदभाव के विरूद्ध अहिंसक संघर्ष किया और इसके माध्यम से अनेक राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं एवं विवादों का नैतिक हल खोजने का सतत् प्रयास किया। इस क्रम में उन्होंने चित्तशुद्धि पर बल दिया तथा आत्मबल को जागृत किया ताकि लोग स्वेच्छापूर्वक आत्मानुरूप मूल्यपूर्ण आचरण कर सके।

उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्पूर्ण मानवता के लिए सत्य, अंहिसा, शांति एवं प्रेम के पथ पर आगे बढ़ने के लिए सदैव उत्प्रेरित करता है।

मार्क्सवाद और सर्वोदय में अन्तर

क्र.सं.	क्षेत्र	मार्क्सवाद	सर्वोदय
1.	**दार्शनिक आधार**	मार्क्सवाद भौतिकतावादी दर्शन है।	सर्वोदय का आधार आध्यात्मिक है।
2.	**साधन साध्य**	मार्क्स के अनुसार श्रेष्ठ लक्ष्य की प्राप्ति के लिये किसी भी प्रकार का साधन अपनाया जा सकता है। इस संबंध में नैतिक मापदण्ड पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है।	सर्वोदय साध्य और साधन दोनों की पवित्रता पर बल देता है। दोनों में अन्योन्याश्रय संबंध है। गाँधी के अनुसार साधन और साध्य एक ही सिक्के के दो पक्ष हैं और इनमें बीज और वृक्ष के जैसा संबंध है।
3.	**पद्धति**	मार्क्स सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये वर्ग संघर्ष पर बल देते हैं।	गाँधी सामाजिक परिवर्तन लाने के लिये अहिंसा, सत्याग्रह और वर्ग-सहयोग पर बल देते हैं।
4.	**धर्म**	धर्म अफीम है, वह मानव को कार्य करने की प्रेरणा न देकर भाग्यवादी बना देता है। धर्म के कारण व्यक्ति में अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की क्षमता समाप्त हो जाती है। धर्म समाज में अन्याय और शोषण को तर्कसंगत और न्यायपूर्ण सिद्ध करने का प्रयास करता है। अतः धर्म त्याज्य है, उसे मानव जीवन से बहिष्कृत कर देना चाहिए।	धर्म मानव जीवन का आधार स्तंभ है। जीवन के सभी पक्ष धर्म से प्रभावित हैं। इसमें राजनीति भी सम्मिलित है। यहाँ धर्म से गाँधी का तात्पर्य धर्म के आन्तरिक पक्ष से है अर्थात् मानव कल्याण के प्रेरक सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों से है।

NOTES

5.	**राज्य**	मार्क्स के अनुसार राज्य की उत्पत्ति का आधार शोषण है। राज्य पूंजीपतियों द्वारा शोषण करने का यंत्र है। संघर्ष व हिंसा द्वारा राज्य की समाप्ति आवश्यक है।	राज्य शक्ति के बल पर बना संगठन है। वह दार्शनिक, नैतिक, ऐतिहासिक व आर्थिक कारणों से राज्य की समाप्ति के पक्षधर हैं। पारस्परिक सहयोग, सत्य व अहिंसा पर आधारित समाज को ही वह रामराज्य की संज्ञा प्रदान करते हैं। यह समाज श्रम आधारित होगा।
6.	**संपत्ति**	मार्क्स के अनुसार, पूँजीपति जब तक पूँजी के स्वामी बनें रहेंगे, तब तक वे निजी लाभ का मोह छोड़ नहीं सकते। अतः समाज की सम्पत्ति को समाज की सेवा में लगाने के उद्देश्य से वर्ग संघर्ष और समाजवादी क्रांति के माध्यम से पूँजीपतियों का स्वत्वहरण (Expropriation) आवश्यक है।	गाँधी संपत्ति के स्वामित्व के प्रश्न पर 'ट्रस्टीशिप' के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। उनके अनुसार व्यक्तिगत संपत्ति होगी, किंतु उसमें संपत्तिधारक केवल अपनी आवश्यकता के अनुरूप उसका उपयोग करेगा। शेष संपत्ति समाज की थाती के रूप में रहेगी।
7.	**वर्गहीन समाज**	मार्क्स निजी संपत्ति को समाप्त करके वर्गहीन समाज लाना चाहता है।	गाँधी श्रम की गरिमा के आधार पर वर्गहीन समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

गाँधी (1869-1948)	अंबेडकर (1889-1956)
वर्ण व्यवस्था के प्रबल समर्थक।	वर्ण-व्यवस्था के कट्टर आलोचक।
वर्ण-व्यवस्था समाज के लिये उपयोगी। श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण को बढ़ावा मिलता हैं।	वर्ण-व्यवस्था अवैज्ञानिक, अमानवीय, अलोकतांत्रिक, अनैतिक, अन्यायपूर्ण एवं शोषणकारी सामाजिक योजना है। अतः वे इसका पूर्ण उन्मूलन चाहते थे।
छुआछूत का वर्ण-व्यवस्था से सीधा संबंध नहीं है। अर्थात् छुआछूत वर्ण-व्यवस्था की अनिवार्य विकृति न होकर वाह्य विकृति हैं। अतः छूआछूत को दूर करने के लिये वर्ण-व्यवस्था को समाप्त करने की नहीं, बल्कि इसमें रचनात्मक सुधार की आवश्यकता हैं।	अस्पृश्यता या छुआछूत वर्ण-व्यवस्था का अनिवार्य परिणाम है। अतः बिना वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन किये छुआछूत को दूर नहीं किया जा सकता।
छुआछूत को दूर करने के लिये आदर्शवादी, दीर्घकालिक उपायों की बात।	छुआछूत को दूर करने के लिये व्यावहारिक, त्वरित एवं ठोस उपायों पर बल।
सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोणों में परिवर्तन के माध्यम से अछूतों के प्रति भेदभाव को दूर करने का प्रयास। इसको लिये वे धर्म-परिवर्तन की आवश्यकता नहीं मानते।	हिदू-धर्म के अतर्गत अछूतों का उद्धार नहीं हो सकता। अतः धर्मान्तरण द्वारा दलितों के उद्धार का प्रयास किया।
गाँधी के अनुसार हिन्दू धर्मशास्त्र अस्पृश्यता का समर्थन नहीं करते। अतः धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह ठीक नहीं है।	अम्बेडकर के अनुसार हिन्दू धर्मशास्त्रों में ही अस्पृश्यता के बीज विद्यमान हैं। अतः अस्पृश्यता को दूर करने के लिये हिन्दू धर्मशास्त्रों की मूल मान्यताओं से विद्रोह करना होगा।

गाँधी के लिये विदेशी दासता और अस्पृश्यता दोनों ही भारतीयों के माथे पर गम्भीर कलंक के समान हैं। परन्तु वे अंबेडकर की इस बात से सहमत नहीं थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष को स्थगित करके पहले अस्पृश्यता निवारण एवं दलितोद्धार जैसे मुद्दों का समाधान किया जाए ओर तत्पश्चात ही देश की राजनीतिक स्वतंत्रता के लिये प्रयास किया जाए। गाँधी इन दोनों कलकों से भारतीय समाज को मुक्त करने को लिये लोगों को एक साथ सजग, संगठित एवं संघर्षशील बनाना चाहते थे।	अम्बेडकर के अनुसार अस्पृश्यता का कलंक विदेशी दासता की तुलना में अधिक गंभीर हैं। उनके अनुसार जब तक समाज का एक बड़ा वर्ग सामान्य मानवीय अधिकारों से वंचित है, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता का कोड अर्थ नहीं है। अत: वे अस्पृश्यता निवारण को प्रथम वरीयता देकर ब्रिटिश दासता से मुक्ति के प्रश्न को उसके बाद स्थान देते थे।

NOTES

जाति भेद: गांधी व अम्बेडकर (*Caste Discrimination : Gandhi and Ambedkar*)

भूमिका

गांधी और अम्बेडकर दोनों तत्कालीन सामाजिक स्थितियों व परिवेश से असंतुष्ट थे। दोनों समाज का नव निर्माण करना चाहते थे। इस क्रम में दोनों ने समाज में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों, जाति-भेद, छुआछूत आदि को दूर करने का प्रयास किया।

गांधी सामाजिक समरसता की स्थापना एवं सर्वोदय की अवधारणा को साकारित करने के लिए परम्परागत हिंदू सामाजिक संरचना में रचनात्मक सुधार चाहते हैं। वहीं अम्बेडकर इसमें मूलभूत ढांचागत परिवर्तन की मांग करते हैं और ऐसा न होने पर शूद्रों के लिए हिंदू धर्म से अलग होने की भी सिफारिश करते हैं।

गांधी और अम्बेडकर दोनों जाति आधारित भेद-भाव को समाप्त करना चाहते हैं। दोनों शूद्रों की समस्या का समाधान चाहते हैं परंतु इस समस्या के कारण, स्वरूप व निदान के प्रति दोनों का दृष्टिकोण एवं कार्य-पद्धति अलग-अलग है। परिणामस्वरूप दोनों में समस्या-समाधान के प्रति एक वैचारिक दूरी सदैव बनी हुई है।। वे समस्याओं के समाधान हेतु अलग-अलग मार्ग प्रस्तुत करते हैं। इस क्रम में दोनों ने वर्ण-व्यवस्था के संबंध में अपने विचार प्रस्तुत किए हैं।

गांधी का वर्ण व्यवस्था सम्बन्धी विचार

गांधी वर्ण व्यवस्था को हिंदू धर्म का अनिवार्य अंग मानते हैं। वे इसे 'धर्म का आविष्कार' तथा ''सत्य की निरंतर गवेषणा का परिणाम'' मानते है। गांधी के अनुसार वर्ण व्यवस्था का आशय व्यवसाय मूलक विभाजन पर आधारित सामाजिक संगठन से है। 'हरिजन' में गांधी यह कहते है कि ''वर्ण धर्म का अर्थ है- हर एक को कर्तव्य के रूप में अपने पुरखों के आनुवंशिक व्यवसाय को वहां तक निर्वाह करना चाहिए जहाँ तक वह आधारभूत नैतिकता के विरूद्ध न हो।''

गांधी के सामाजिक विचारों का आधार समानता है। इनके अनुसार सभी व्यक्ति समान हैं। अत: जाति, धर्म, व्यवसाय इत्यादि के आधार पर समाज में जो असमानता, ऊँच-नीच, उत्कृष्ट-निकृष्ट आदि का भाव निर्मित किया गया है वह कृत्रिम है। वह मनुष्य की अपनी इच्छापूर्ति या स्वार्थपूर्ति का साधन है। आदर्श समाज की स्थापना तभी हो सकती है, जब ऊँच-नीच का यह भाव समाप्त हो।

सामाजिक संदर्भ में गांधी यद्यपि जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था के समर्थक हैं परंतु वे जाति-व्यवस्था, अस्पृश्यता (छुआछूत) आदि के विरोधी है। गांधी वर्ण-व्यवस्था को केवल व्यक्ति के आर्थिक जीवन व आजीविका प्राप्ति से सम्बधित करते हैं जिसमें ऊंच-नीच का स्थान नहीं है। गांधी की इस वर्ण-व्यवस्था में 3 बातें सम्मिलित हैं:-

1. सभी कार्यों या व्यवसायों में समानता होनी चाहिए। इसमें श्रेष्ठता-निम्नता का भाव नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में धर्मों द्वारा बताये गये श्रेणीगत पदानुक्रम को स्वीकार नहीं किया जा सकता।
2. वंशानुगत कार्य परम्परागत व्यवसाय को व्यक्ति द्वारा अपनी आजीविका का साधन व समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन समझ कर करना चाहिए। दूसरे शब्दों में व्यक्ति को स्वधर्म का पालन निष्ठा के साथ करना चाहिए।

NOTES

3. समाज में इस विचार का पालन करने के लिए विभिन्न कार्यों व व्यवसायों से प्राप्त होने वाले लाभों में अधिकाधिक समानता होनी चाहिए ताकि उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कमी न आए। स्पष्टत: वर्ण-व्यवस्था की अवधारणा में कीमत एवं प्रतिष्ठा के संबंध में समरूपता पर जोर दिया गया है।

आचार्य विनोबा भावे ने गांधी के वर्ण-व्यवस्था का सार निम्न बातों में बताया है-

1. सभी प्रकार की प्रतियोगिता की समाप्ति हो।
2. सभी कार्यों, उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए समान वेतन की व्यवस्था हो।
3. सभी व्यक्तियों को वंशानुगत शक्तियों या योग्यता से लाभ उठाने के लिए उपयुक्त शिक्षा की व्यवस्था हो।

गांधी के अनुसार वर्ण-व्यवस्था में सामाजिक कर्तव्यों के वर्गीकरण एवं श्रम विभाजन की बात निहित है। इसमें व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक समाज रचना का आधार निहित है।

गांधीजी निम्नलिखित कारणों से वर्ण-व्यवस्था का समर्थन करते हैं–

- जन्म आधारित वर्ण-व्यवस्था से वंशानुगत व्यवसाय को परिष्कृत करने में आसानी होगी। पिता द्वारा प्राप्त अनुभव व योग्यता को प्राप्त कर पुत्र जीवन में सरलता से अग्रसरित हो सकता है व अपनी आजीविका की पूर्ति कर सकता है। सरलता से आजीविका की पूर्ति होने पर व्यक्ति अपने शेष समय का सदुपयोग अपनी आध्यात्मिक उन्नति में कर सकता है।
- मनुष्य द्वारा अपना पैतृक कार्य त्यागने पर अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। इससे समाज में किसी कार्य विशेष के लिए प्रतियोगिता व संघर्ष उत्पन्न हो सकता है। परिणामस्वरूप घृणा व विद्वेष की भावना बढ़ेगी, बेरोजगारी का विस्तार होगा। इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था से आर्थिक जीवन में कटुता व प्रतियोगिता की समाप्ति होगी। व्यक्तिगत लाभ अर्जन करने का भाव समाप्त होगा।
- वर्ण-व्यवस्था से सामाजिक संतुलन की स्थापना में मदद मिलती है। यह हिंदू धर्म की आंगिक एकता को इंगित करता है।

गांधी इस आंगिक एकता को दैवीय व प्राकृतिक मानते हैं। यह वंशानुगत कर्म नियम शाश्वत नियम है। इसमें ढांचागत परिवर्तन सम्भव नहीं है। यहाँ गांधी वर्ण-व्यवस्था को मानने के साथ-साथ यह भी मानते हैं कि सामाजिक महत्त्व एवं कीमत के दृष्टिकोण से सभी कार्य समान है। अत: किसी कार्य को छोटा या बड़ा नहीं समझना चाहिए। गांधी के अनुसार वर्ण-व्यवस्था में विकृति का कारण कुछ पेशों तथा व्यवसायों को निम्न मानकर तथा कुछ को उच्च मानकर जातिगत विशेषताओं को उसमें स्थापित करना है। स्पष्टत: जब वर्ण-व्यवस्था में ऊंच-नीच का भाव आता है तो फिर जाति भेद का रास्ता प्रशस्त होने लगता है। यह जाति-भेद वर्ण-व्यवस्था में विकृति का परिणाम है। गांधी के अनुसार वर्ण का सिद्धांत जाति का सिद्धांत नहीं है क्योंकि-

1. वर्ण-व्यवस्था नैतिक है जबकि जाति का सिद्धांत अनैतिक है।
2. वर्ण-व्यवस्था का सिद्धांत श्रम विभाजन पर आधारित है। यह सामाजिक कर्तव्यों के विभाजन व वर्गीकरण का सिद्धांत है जबकि जाति-व्यवस्था कृत्रिम है। यह समाज में विषमता व घृणा को बढ़ावा देती है। आदर्श समाज के निर्माण के लिए इसका विनाश आवश्यक है।
3. वर्ण चार है, जातियां अनेक हैं। जातियों में ऊँच-नीच, उत्कृष्टता-निकृष्टता का भाव विद्यमान है। इससे अस्पृश्यता को बढ़ावा मिलता है। सर्वोदयी समाज की रचना करने के लिए इसका उन्मूलन आवश्यक है।

जाति भेद बनाम जातिवाद

जातिभेद का घनिष्ठ संबंध जातिवाद से है। जातिवाद जातिप्रथा से सम्बन्धित है। यह एक सामाजिक समस्या है। यह जातिवाद ही एक अर्थ में विभिन्न जातियों में स्तरीकरण एवं श्रेणीकरण को बढ़ाकर जाति-विभेद की नींव रखता है। जिसकी अभिव्यक्ति एक-दूसरे के प्रति घृणा, द्वेष या प्रतिस्पर्धा के रूप में होती है। अपनी ही जाति के हित को सर्वोप. रि समझना जातिवाद का सबसे सामान्य रूप है। वस्तुत: जातिवाद एक जाति के सदस्यों की वह भावना है जो अपनी जाति के हित के सम्मुख अन्य जाति के समान हितों का अवहेलना व प्राय: हनन करने को प्रेरित करती है। जातिवाद में समाज या व्यक्ति की बजाय केवल अपनी जाति के हित को ध्यान में रखा जाता है। इस रूप में जातिवाद मानव भावनाओं का संकुचित रूप है। यह 'वसुधैव कुटुंबकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिन:' की अवधारणा पर चोट करता है। सर्वोदयी समाज के निर्माण में यह घातक है।

निदान का उपाय

परम्परागत हिंदू समाज की संरचना में सुधार किया जाय, उसमें आयी विकृति को दूर किया जाय। इसके लिए गांधी निम्नलिखित उपाय करते हुए नजर आते हैं:-

1. सवर्णों का हृदय परिवर्तन
2. मंदिर प्रवेश
3. 'हरिजन' नाम देना - मनोवैज्ञानिक समर्थन
4. 'हरिजन सेवक संघ' की स्थापना
5. कथन- अगर मेरा पुनर्जन्म हो तो शूद्र के रूप में ताकि मैं उनका पूर्ण सुधार कर सकूँ। अगर नहीं हुआ तो हिंदू धर्म नष्ट हो जाएगा।
6. जाति भेद का प्रयोग कर विभिन्न राजनीतिक दलों ने अपना हित संवर्द्धन किया है।
7. गांधी शूद्रों के रहन-सहन के ढंग में भी सकारात्मक परिवर्तन चाहते हैं। उनके अनुसार वे मांस भक्षण, मदिरापान इत्यादि निकृष्ट कोटि के कार्यों से दूर रहें।

निदान क्यों जरूरी

1. अस्पृश्यों के अलग होने पर सवर्णों और उनके बीच अंतर्जातीय संघर्ष की दूसरी या नयी सामाजिक समस्या उत्पन्न हो जाएगी।
2. सामाजिक संतुलन व सामाजिक स्वास्थ की रक्षा हेतु।
3. हिंदू समाज की एकता को बनाए रखने के लिए।
4. हिंदू समाज को विनष्ट होने से बचाने के लिए।

अम्बेडकर (1891-1956)

अम्बेडकर अपनी व्यक्तिगत पृष्ठभूमि व अपने अनुभव के आधार पर यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हुए जाति-भेद के कारण, स्वरूप व निदान पर अपना मत प्रस्तुत करते हैं-

अम्बेडकर जाति-भेद के निदान हेतु परम्परागत हिंदू सामाजिक संरचना में ढांचागत परिवर्तन की बात करते हैं। इस क्रम में वे ***वर्ण व्यवस्था का विरोध करते हैं, क्योंकि-***

1. इनके अनुसार दलितों की अमानवीय स्थिति का मूल कारण वर्ण-व्यवस्था है।
2. इसमें व्यक्ति की क्रियात्मक क्षमता की उपेक्षा का भाव सम्मिलित है।
3. इसमें गुण की बजाय केवल जन्म के आधार पर किसी को पूजनीय व किसी को घृणित करार दिया जाता है।
4. वर्ण-व्यवस्था में यह माना जाता है कि सब की नियति पूर्व निर्धारित है। इसका आशय यह है कि दलित का दलित बने रहना ही ईश्वरीय इच्छा है। इस रूप में यह व्यवस्था व्यक्ति की स्थिति में परिवर्तन का विरोधी है।
5. वर्ण-व्यवस्था अपमानजनक सामाजिक व्यवस्था है। यह मनुष्य की सृजनशील प्रवृतियों पर कुठाराघात कर उनमें परावलंबन की भावना को बढ़ाता है।
6. इनके अनुसार वर्ण-व्यवस्था कोई दैवीय या प्राकृतिक नियम नहीं है। यह अटल नियम नहीं है। यह एक कृत्रिम व्यवस्था है जो कि कुछ वर्गों द्वारा अपनी स्वार्थों की सिद्धि हेतु निर्मित की गयी है। **गांधी** जहां यह मानते थे कि ***जाति भेद वर्ण-व्यवस्था की विकृति का परिणाम है***। अतः वर्ण-व्यवस्था को बनाए रखकर भी इसकी विकृति को दूर किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, वर्ण-व्यवस्था और जाति-व्यवस्था में अनिवार्य संबंध नहीं है। वहीं **अम्बेडकर** यह कहते हैं कि वर्ण-व्यवस्था की स्वाभाविक, अनिवार्य विकृति का परिणाम जाति-भेद है, अतः जाति भेद को दूर करने के लिए वर्ण-व्यवस्था का उन्मूलन आवश्यक है।

यहाँ अम्बेडकर वर्ण को नए रूप में व्याख्या करते हैं। इनके अनुसार आरंभ में वर्ण-व्यवस्था तीन वर्णों में बंटी थी-

1. ब्राह्मण 2. क्षत्रिय 3. वैश्य

इंडो-आर्यन समाज में शूद्रों को क्षत्रिय वंश का अंश माना जाता था। उनका कोई पृथक वर्ण नहीं था। ये क्षत्रिय

NOTES

NOTES

वर्ण के ही भाग माने जाते थे, परंतु कालांतर में जब ब्राह्मणों एवं शूद्र राजा के बीच संघर्ष प्रारंभ हुआ तो फिर ब्राह्मणों ने शूद्रों का उपनयन संस्कार करना बंद कर दिया। इस प्रकार उन्हें क्षत्रिय वर्ग से पृथक कर दिया गया। इन तीनों वर्णों से पृथक शूद्रों के लिए एक चौथा वर्ण बनाया गया तथा सेवा संबंधी कार्यों को उनसे सम्बन्धित कर दिया गया। सामाजिक-आर्थिक संदर्भों में उनके ऊपर अनेक बंदिशें लगा दी गयी। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति में लगातार नकारात्मक परिवर्तन होता गया।

हिंदू धर्म में सुधार के सलाह

अम्बेडकर हिंदू धर्म को उसके अमानवीय मूल्यों एवं जातिगत भेदों से छुटकारा दिलाने के लिए कुछ सुझाव देते हैं:-

1. हिंदुओं के नैतिक आचरण के निर्धारण हेतु केवल एक प्रमाणिक धार्मिक ग्रंथ होना चाहिए जो सभी हिंदुओं द्वारा मान्य व स्वीकार हो। इस एक ग्रंथ के अलावा बाकी अन्य ग्रंथों को कोई सामाजिक या कानूनी मान्यता नहीं दी जाय। अन्य धर्मग्रन्थों के सिद्धांतों, नियमों आदि का प्रचार करना दंडनीय अपराध घोषित किया जाय।
2. पंडे, पुजारियों के पद समाप्त किए जाय। यदि रहे भी तो फिर इसका आधार वंशानुगत या जन्म ना होकर राज्य द्वारा ली जाने वाली परीक्षा में उत्तीर्णता हो। प्रत्येक हिंदू के लिए पुरोहिताई के द्वार खोल दिए जाय।
3. किसी भी पंडे या पुजारी को उस कार्य के निर्वहन के लिए न्यूनतम शिक्षा का होना आवश्यक होना चाहिए। बिना डिग्री या उपाधि के इस कार्य को करने पर दंड का प्रावधान होना चाहिए।
4. राज्य की आवश्यकताओं को देखते हुए आई. सी. एस. अधिकारियों की भांति पुरोहितों की संख्या भी निर्धारित व निश्चित होनी चाहिए।
5. पुरोहितों को राज्य का नौकर होना चाहिए। राज्य द्वारा उसे तनख्वाह देनी चाहिए।

अंबेडकर के कुछ अन्य विचार

अम्बेडकर सवर्णों के हृदय परिवर्तन व गांधी के थोड़े बहुत सामाजिक सुधार कार्यक्रम पर विश्वास नहीं करते थे तथा वे समानता की स्थापना हेतु दीर्घकालीन इंतजार के भी पक्षधर नहीं थे। उनका कहना था कि स्वतंत्रता व समानता के खोए हुए अधिकार याचना से नहीं अपितु कठिन संघर्ष से प्राप्त होता है। इसीलिए उन्होंने अपने हक के लिए याचना की बजाय संघर्ष करना अधिक उपयुक्त समझा। दलितों के हित को प्रकाश में लाने के उद्देश्य से 'मूक नायक' व 'बहिष्कृत भारत' दोनों पाक्षिक पत्रिका के प्रकाशन में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

अम्बेडकर के दलित आंदोलन की दो प्रमुख धाराएं थी - 1. सामाजिक समानता के लिए संघर्ष 2. सांस्कृतिक दासता से मुक्ति

अम्बेडकर पहले इन लक्ष्यों की प्राप्ति हिंदू समाज में रहकर करना चाहते थे। इसके लिए एक तरफ उन्होंने दलितों को मंदिर प्रवेश व अन्य नागरिक अधिकार देने के लिए संघर्ष किया तो दूसरी तरफ उन्होंने हिंदू धर्म-ग्रंथों से उन अंशों को हटाने की बता की जो सामाजिक विषमता व बुराईयों को प्रश्रय देते थे। इस संदर्भ वे एक नए हिंदू ग्रंथ की वकालत करते है जिसमें स्वतंत्रता, समानता व भ्रातश्त्व की भावना हो।

अम्बेडकर को धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत हुआ कि परम्परागत हिंदू सामाजिक संरचना में सकारात्मक प्रभावी सुधार कर पाना कठिन है इसीलिए वे कालांतर में हिंदू धर्म से अलग होकर बौद्ध धर्म को ग्रहण करते हैं जो कि समानता, स्वतंत्रता व भ्रातश्त्व की मूल भावना पर आधारित है, जहाँ स्वावलंबन की भावना विद्यमान थी तथा बिना ईश्वर आदि की सहायता से अपने लक्ष्यों को साकारित करने का भाव विद्यमान था।

अम्बेडकर ने नागपुर में हुए अखिल भारतीय दलित वर्ग अधिवेशन (1956) में यह घोषणा की कि- एक समय था जबकि हिंदू समाज के अभिन्न अंग के रूप में समानता की प्राप्ति के लिए हमने संघर्ष किया, किंतु अब हमारे आंदोलन का लक्ष्य मूलतः बदल गया है। अब हम राष्ट्रीय जीवन में हिंदुओं से भिन्न पृथक तत्व के रूप में बराबर के स्तर पर खड़े हैं। परंतु राष्ट्र आंदोलन की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर उन्होंने पृथक निर्वाचन की मांग तो छोड़ दी परंतु दलितों के लिए आरक्षण व उनकी विशेष सुविधाओं की मांग को लेकर दलितों के हित में एक नया पक्ष प्रस्तुत किया।

जाति-भेद के विविध आयाम

अम्बेडकर ने हिंदू जाति-प्रथा की खामियों, बुराईयों व विकृतियों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। इनके अनुसार दलितों के जीवन के सभी क्षेत्र इनसे प्रभावित हैं।

1. शिक्षा ग्रहण करने की मनाही
2. दूसरों से विवाह करने की मनाही
3. अस्त्र-शस्त्र रखने की छूट नहीं
4. उत्पीड़न के प्रति विरोध की आजादी नहीं
5. सार्वजनिक तालाबों व कुओं के उपयोग की मनाही।
6. मंदिर में प्रवेश को लेकर पाबंदियां
7. स्वतंत्र रूप से आर्थिक क्रियाकलाप की मनाही
8. किसी राजकीय पद पर इनकी नियुक्ति नहीं
9. सामाजिक व्यवस्था में अंतिम स्थान
10. कार्य केवल उच्च वर्गों की सेवा करना
11. शूद्रों के जीवन का कोई मूल्य नहीं
12. पृथक आवासीय क्षेत्र
13. निम्न सामाजिक स्तर

अम्बेडकर ने जाति आधारित भेदभाव को दूर करने के लिए कई रचनात्मक उपाय दिए हैं:-

1. अंतर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन।
2. शिक्षा-व्यवस्था पर ब्राह्मणों का एकाधिकार समाप्त कर उसे सर्वव्यापी बनाया जाय।
3. अस्त्र-शस्त्र एवं सेना में भर्ती से संबंधित मामलों पर से क्षत्रियों का एकाधिकार समाप्त किया जाय। भर्ती योग्यतानुसार हो।
4. सभी वर्गों व जातियों के लोगों को समान रूप से चुनाव लड़ने व मत देने का समान अवसर प्रदान किया जाय।
5. एक नयी सामाजिक व्यवस्था के निर्माण का प्रयास जो स्वतंत्रता, समानता एवं भ्रातृत्व की मूल भावना पर आधारित हो।
6. वैज्ञानिक मनोवृत्ति को प्रोत्साहन
7. औद्योगिकीकरण एवं शहरीकरण को बढ़ावा

जाति-विभेदीकरण के सकारात्मक पक्ष

- जाति-व्यवस्था वंशानुगत व्यवसायों के ज्ञान, कला एवं व्यवहार को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करती है। इस रूप में यह व्यवस्था संस्कृति को बचाने एवं उत्पादकता को बढ़ाने में सहायक है।
- इस व्यवस्था से विभिन्न जातियों में अन्त:निर्भरता बढ़ती है। विभिन्न व्यवसायों के लोग अपने कार्यों के सम्पादन हेतु दूसरों पर निर्भर रहते हैं।
- जाति-व्यवस्था व्यक्ति को मानसिक संतोष एवं सुरक्षा प्रदान करती है। जीवन में क्या कार्य करना है, किस समूह में विवाह करना है, किस प्रकार के सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक कार्यों का सम्पादन करना है, यह निर्धारित हो जाता है।
- प्रत्येक जाति का एक जातिगत संगठन होता है जो अवसर विशेष पर उस जाति के सदस्यों को सहायता प्रदान करता है। इससे सामाजिक सुरक्षा की स्थापना होती है।
- जाति अपने सदस्यों को एकता के सूत्र में बांधती है। जाति के सदस्यों की भलाई के लिये, धर्मशालाएँ, चिकित्सालाएँ, विद्यालय, छात्रावास आदि का निर्माण किया जाता है।
- जाति-प्रथा बहु-समाज की स्थापना में सहायक है। यहाँ प्रत्येक जाति समाज के उपयोगी अंग के रूप में कार्यरत रहती है। इस प्रकार जाति व्यवस्था परंपरागत सामाजिक संगठन को बनाये रखने की पक्षधर है।
- जाति-प्रथा श्रम-विभाजन पर आधारित है। इससे दक्षता एवं विशेषीकरण को बढ़ावा मिलता है।
- जाति-प्रथा, राजनैतिक स्थिरता एवं सांस्कृतिक रक्षा में भी सहायक है। सामान्यत: जब किसी देश पर वाह्य आक्रमण ाकारियों का शासन स्थापित होता है तो फिर वहाँ सांस्कृतिक एवं राजनैतिक परिवर्तन आ जाते हैं, परन्तु भारत इसका अपवाद रहा है। समय-समय पर भारत पर अनेक आक्रमण हुए, परन्तु विभिन्न जातियों ने इन आक्रमणों से भारत की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक सुरक्षा की।

NOTES

निष्कर्षतः ऐसा कहा जा सकता है कि जाति-प्रथा अपने सर्वोत्कृष्ट रूप में इस विृाल देश में निवास करने वाले विभिन्न विचार, विभिन्न धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज एवं परंपराओं से युक्त विविध वर्गों को एक सूत्र में बांधने का एक सफलतम प्रयास था।

नकारात्मक पक्ष

यह सही है कि जाति-व्यवस्था ने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये हैं, परन्तु समय के साथ-साथ इसमें अनेक विसंगतियाँ आयी हैं। यही कारण है कि वर्तमान में अधिकांश लोग जाति के उन्मूलन की बात करते हैं। इस तथ्य की पुष्टि डा० राधाकृष्णन के इस कथन से होती है कि-''दुर्भाग्यवृा वही जाति-प्रथा जिसे सामाजिक संगठन को नष्ट होने से रक्षा करने से, साधन के रूप में विकसित किया गया था, आज उसी की उन्नति में वह बाधक बन रही है।'' जाति प्रथा की हानियाँ निम्नलिखित हैं-

- जाति-प्रथा समानान्तर विकास एवं लम्बवत् विकास पर प्रहार करती है। जातिवाद के कारण योग्य व्यक्तियों को आगे बढ़ने का अवसर नहीं मिल पाता। इस रूप में यह सम्यक् आर्थिक विकास में बाधक है।
- जाति-व्यवस्था देश की एकता में बाधा उत्पन्न करती है। प्रत्येक जाति राष्ट्रीय हितों के स्थान पर अपने जातीय हितों को प्रधानता देती है। यह राष्ट्रीय भावना के विकास में बाधक है।
- जाति-प्रथा सामाजिक विषमता को बढ़ावा देती है। चूँकि इसमें ऊँच-नीच का भाव रहता है, अतः इससे अस्पृश्यता का जन्म होता है। अस्पृश्यता समाज का कैंसर है।
- जाति-प्रथा धर्म-परिवर्तन को भी बढ़ावा देती है। आर्थिक एवं सामाजिक शोषण से मुक्ति पाने के लिये निम्न जातियों के कई लोग धर्म परिवर्तन कर लेते हैं।
- जाति-प्रथा प्रजातंत्र की विरोधी है। प्रजातंत्र समानता, स्वतंत्रता एवं भ्रातश्त्व की भावना पर आधारित है। जबकि जाति जन्म से ऊँच-नीच एवं असमानता पर आधारित है। इस रूप में ये दोनों परस्पर विरोधी हैं।

जाति-व्यवस्था के निवारण हेतु उपाय

- जाति आधारित राजनीति को हतोत्साहित किया जाए।
- जातिगत शब्दों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए।
- सामाजिक एवं नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाए।
- समाज के सभी वर्गों के पिछड़ों को मिलाकर एक वर्ग बनाया जाए और उस वर्ग को आरक्षण किया जाए।

आचार्य विनोबा भावे (1895-1982)

- महात्मा गाँधी के आध्यात्मिक अनुयायी।
- 'भूदान एवं ग्रामदान' आंदोलन के संस्थापक।
- व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पक्ष - त्याग, प्रेम, सेवा भाव, परानुभूति, अनुशासन, सचरित्रता ।

आचार्य विनोबा भावे का जन्म 11 सितम्बर, 1895 में महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के गंगोड़ नामक ग्राम में हुआ था। इनका बचपन का नाम विनायक नरहरि भावे था किंतु गांधी जी ने इन्हें 'विनोबा भावे' का नाम दिया। उन्होंने गाँधीजी के बाद उनके विचारों को कार्यरूप देने का प्रयास किया। वे कर्मयोगी, सर्वधर्म समभाव के समर्थक, अनुशासन प्रिय एवं आध्यात्मिक प्रवृत्ति के समाज सुधारक तथा सृजनात्मक कार्यों के सूत्रधार थे। उन्होंने समाज के बहुमुखी सुधार एवं विकास के लिए के लिए समर्पित भाव से कार्य किया। राजनीति, धर्म, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में सुधार की सम्भावनाओं पर सारगर्भित विचार प्रस्तुत किये।

सर्वोदय की अवधारणा को साकारित करने एवं समाज में फैली विषमताओं को दूर करने हेतु 28 मई, 1851 को वारंगल(तेलंगाना) भू-दान आंदोलन का शुभारंभ किया। इसका उद्देश्य भूमि का न्याय संगत वितरण कराने के साथ-साथ जमींदारों में त्याग की भावना और भूमिहीनों में आत्म सम्मान का भाव जागृत करना था। उन्होंने भू-दान आंदोलन के माध्यम से देश के हजारों लोगों को भूमि दिलवाकर जीने का साधन उपलब्ध कराया। वे अस्पृश्यता निवारण व कुष्ठ रोगियों की सेवा हेतु आजीवन प्रयासरत् रहे। उनका प्रमुख उद्देश्य था- शासनविहीन एवं शोषणविहीन समाज की स्थापना।

704, Ground Floor, Main Road, Opposite Batra Cinema, Mukherjee Nagar, Delhi-09

KGS IAS

इस क्रम में उन्होंने गांधी के सर्वोदयी दर्शन को साकारित करने का प्रयास किया।

विनोबा भावे की निष्ठा, त्याग, समर्पण और सेवाधर्म का सम्मान करते हुए भी गाँधी जी ने सन 1940 के व्यक्तिगत सत्याग्रह में उन्हें पहला सत्याग्रही घोषित किया था। पहले सत्याग्रही के रूप में उनका पहला भाषण पवनार में हुआ।

मध्य प्रदेश में अपनी चम्बल यात्रा के दौरान विनोबा भावे ने हजारों बागियों का मनोवृत्ति परिवर्तन कर एक नई जिंदगी शुरू करने के लिए प्रेरित किया और उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल किया।

उन्होंने गाँधीजी के 11 व्रतों का एक पद्य बना डाला और उस पर अभंग व्रत नाम से भाष्य भी लिख डाला-

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भय वर्जन।
सर्वधर्मसमानत्व, स्वेदशी स्पर्शभावना
ही एकादश सेवावी, नम्रत्वे, व्रतनिश्चये।।

विनोबा का स्वभाव तपस्वी जैसा, काम सन्यासी जैसा और रास्ता गाँधीजी वाला था।

1983 में उन्हें मरणोपरान्त उन्हें भारत के सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' से नवाजा गया।

1940 में प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में विनोबा भावे को जाना जाता था। पहले सत्याग्रही के रूप में उनका पहला भाषण पवनार में हुआ।

मध्य प्रदेश में अपनी चम्बल यात्रा के दौरान विनोबा भावे ने हजारों बागियों का मनोवृत्ति परिवर्तन कर एक नई जिंदगी शुरू करने के लिए प्रेरित किया और उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल किया।

एन. आर. नारायण मूर्ति (20 अगस्त 1946)

नारायण मूर्ति भारत की प्रसिद्ध सॉफ्टवेयर कंपनी इन्फोसिस टेक्नोलॉजीज के संस्थापक एवं सुप्रतिष्ठित कॉरपोरेट लीडर है। आर्थिक कठिनाईयों के बावजूद उन्होनें अपनी सहचरी सुधा मूर्ति और कुछ अन्य मित्रों के साथ मिलकर पुणे में इन्फोसिस की नींव रखी।

उन्होनें अपने दृढ़संकल्प, लगन, आत्मविश्वास, दूरदर्शिता एवं सकारात्मक कार्य-संस्कृति के माध्यम से इन्फोसिस को भारत और विश्व में आईटी क्षेत्र में नई पहचान दिलाई। सॉफ्टवेयर जगत में नए कीर्तिमान स्थापित किये। 1999 में इन्फोसिस अमेरिकी शेयर बाजार नैस्डेक (NASDAQ) में रजिस्टर्ड हुआ। 2005 में इन्हें विश्व का आठवां सबसे बेहतरीन प्रबंधक (Best Administrative) चुना गया। इन्होंने अन्य भारतीय कंपनियों के लिए एक मिसाल कायम की। जिसका प्रभाव भारत की अन्य कंपनियों पर भी पड़ा।

निजी क्षेत्र की दिग्गज कम्पनी होने के बावजूद इनका उद्देश्य केवल लाभ कमाना नहीं है बल्कि नैतिकता युक्त व्यापार करते हुए लाभ के अंश को समाज सेवा एवं स्वास्थ्य, शिक्षा एवं सामाजिक विकास के कल्याणकारी कार्यों में खर्च करना है। इस प्रकार उन्होंने सामाजिक निगमित दायित्व, (Corporate Social Responsibility (CSR) की अवधारणा को धरातल पर उतारने का प्रयास किया है।

नारायणमूर्ति के व्यक्तित्व से सीखी जाने वाले बाते:

- 'कर्म ही पूजा है' (Work is worship) इस कथन में दृढ़ विश्वास। यही कारण है वे युवाओं को सप्ताह में 70-90 घण्टे काम करने की सलाह देते है।
- जीवन में अनुशासन, मितव्ययिता, समय का सद्पयोग, अपनी क्षमता और प्रतिभा को निखारने का प्रयास तथा नियम और कानून का सम्मान करते हुए ईमानदारी से धन कमाने का समर्थन करते हैं।
- जो लोग जीवन में आर्थिक कठिनाईयों एवं संसाधनों की कमी का रोना रोते हैं और निष्क्रिय होकर भाग्य को कोसते हैं, उनके लिए नारायण मूर्ति और उनकी सहधर्मिणी सुधा मूर्ति का जीवन प्रेरणादायी है।
- निजी और सार्वजनिक जीवन में नैतिक आचरण पर बल।

1. उन्होनें सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा और कौशल से देश की युवा शक्ति को उत्प्रेरित किया।

NOTES

2. जिंदगी के हर काम से मिलने वाले अनुभव को वे महत्व देते हैं तथा नए प्रयोगों और नई प्रतिभाओं को मौका प्रदान करते हैं। यह उनकी नवाचार की क्षमता को दर्शाता है।
3. जब कंपनी की स्थिति में नकारात्मक असर पड़ा तो एक बार फिर नारायण मूर्ति दोबारा कार्यकारी चैयरमैन की भूमिका में कंपनी को संभाला और इसे रोमांचकारी और एक नई चुनौती बताया। नारायण मूर्ति की यह वापसी उन सारे प्रशासकों यह संदेश देती है कि यदि स्थिति परिवर्तित हो जाए तो फिर नई चुनौतियों को सामने करने के लिए उन्हें पुन: आगे आना चाहिए तथा नये लोगों का मार्गदर्शन कर समस्या का समाधान करने का प्रयास करना चाहिए।

'इन्फोसिस फाण्डेशन' के माध्यम से समाज सेवा का कार्य-

i. महिलाओं एवं निर्धन बच्चों की सहायता।
ii. देश के सबसे पिछड़े गांवों में स्कूल, पुस्तकालय, कम्प्यूटर शिक्षा एवं अस्पताल की व्यवस्था।
iii. आई.आई.टी. कानपुर जैसे शिक्षण संस्थानों में सुधार और नवाचार के लिए आर्थिक मदद।
iv. उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए विशेष यत्न और नेतृत्व क्षमता में सुधार के लिए प्रशिक्षण।
v. कूड़ा बीनने वाले बच्चों के पुर्नवास, वेश्वावृत्ति उन्मूलन, परित्यक्त बड़े-बुजुर्गों एवं दिव्यांग बच्चों के लिए घर का निर्माण

माइक्रोसॉफ्ट के चेयरमैन बिल गेट्स नाराणन मूर्ति की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि ***''नारायण मूर्ति ने हर प्रकार की बाधाओं को पार कर मूल्यों द्वारा संचालित एक विश्वस्तरीय सॉफ्टवेयर कंपनी का निर्माण कर अपनी अदम्य क्षमता का परिचय दिया है।''***

सामाजिक कार्यों में उनके योगदान और व्यावसायिक नैतिकता को बढ़ावा देने हेतु भारत सरकार द्वारा प्रतिष्ठित पद्मश्री और पद्मविभूषण से सम्मानित किया गया है।

अजीम प्रेमजी

विप्रो के चैयरमैन अजीम प्रेमजी - दानवीर, परोपकार, सादगी, जनहितैषी दृष्टिकोण, असहाय और जरूरतमदों मदद हेतु प्रयत्नशील, समय प्रबंधन, नवाचार, दूरदर्शिता।

वर्ष 2001 में अजीत प्रेमजी फाउंडेशन की स्थापना - इसका लक्ष्य प्राथमिक शिक्षा के स्तर में सुधार एवं सार्वभौमिकरण तथा तकनीक के माध्यम से गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा उपलब्ध कराना है।

प्रख्यात भारतीय उद्योगपति एवं कारपोरेट लीडर अजीम प्रेमजी ने भारत में शिक्षा के उन्नयन के लिए 2 बिलियन डॉलर देने की घोषणा की। सामाजिक हित में कॉरपोरेट घरानों के द्वारा किए जाने वाले नैतिक कर्मों का साक्ष्य है।

अजीम प्रेमजी के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रेरक विचार

- चरित्र ऐसा कारक है, जो हमारे कार्यों और निर्णयों को निर्देशित करता है। हमने बिना समझौता किए ईमानदारी का रास्ता अपनाया है, जिसने हमें सर्वाधिक कठिन परिस्थितियों में कड़े फैसले लेने में सहायता की है।
- यह आवश्यक है कि हमारे स्कूल और शैक्षणिक संस्थान ऐसा माहौल तैयार करें, जिसमें आवश्यक बौद्धिक, शारीरिक, सामाजिक और नैतिक गुण विकसित, पुष्पित और पल्लवित हो सकें। स्कूल ऐसे स्थान माने जोन चाहिए, जिसमें बच्चे और देश के भविष्य को सँवारने की क्षमता हो।
- किसी को दिया जानेवाला सबसे महान् उपहार शिक्षा का उपहार है।
- हमें परिणामोन्मुखी रवैया अपनाना चाहिए। हर नीति का विशिष्ट उद्देश्य तथा दिशा होनी चाहिए और इसके परिणामों का आकलन इसके प्रभाव के संदर्भ में किया जाना चाहिए। देश की प्रगति के लिए विभिन्न कक्षाओं में गतिशीलता होनी चाहिए और 'शिक्षा के अधिकार' कानून का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए।

डॉ. ए.पी.जे अब्दुल कलाम (1931-2015)

NOTES

- डॉ. अबुल पकिर जैनुलाब्दीन अब्दुल कलाम (डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम)
- मिसाइलमैन के नाम से विख्यात वैज्ञानिक, भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति (ग्यारहवें)।
- पद्म भूषण, पद्म विभूषण, भारत का सर्वोच्च नागरिक सम्मान 'भारत रत्न' (1997)
- विनम्रता, सादगी, अनुशासन, सत्यनिष्ठा, कर्मठता, प्रगतिशील भारत के निर्माणकर्ता, प्रशासक एवं महान टीम लीडर।
- भारत में वैज्ञानिक अनुसंधान एवं तकनीकी के विकास में अभूतपूर्व योगदान।
- लक्ष्य की प्राप्ति हेतु लगन, समर्पण एवं दृढ़ निश्चय के साथ निरन्तर कार्य।
- असफलता की स्थिति में भी बिना विचलित एवं भयभीत हुए लक्ष्य प्राप्ति का संकल्प। उनका मानना था कि सफलता की प्राप्ति के क्रम में यदि असफलता भी मिलती है तो उससे सीख लेकर हमें आगे कदम बढ़ाना चाहिए।
- संसाधनों की कमी का बहाना नहीं बल्कि उपलब्ध संसाधनों का कुशलतापूर्वक उपयोग।
- लोगों को ऊंचे स्वप्न देखने और उसकी प्राप्ति के लिए प्रेरित किया।
- शिक्षा के क्रम में मूल्यों का बीजारोपण, नवाचार, प्रयोग एवं निरीक्षण पर बल।
- एक टीम लीडर के रूप में सफलता का श्रेय अपनी टीम को और असफल होने पर स्वयं आगे बढ़कर उसकी जिम्मेदारी लेना।
- विनम्र व्यक्तित्व के स्वामी, मानवतायुक्त विज्ञान के समर्थक, सदैव लोगों के कल्याण हेतु विचार और कार्य।
- उनका जीवन प्रशासकों एवं नेताओं के साथ-साथ आम जनता के लिए भी अनुकरणीय एवं प्रेरणादायी है।
- उनकी कविताएं सभी भारतवासियों के हृदय में देशभक्ति, गौरवबोध एवं आत्मनिर्भर होने का संदेश देती है।
- ज्ञान का दीप जलाए रखूँगा

  'हे भारतीय युवक
  ज्ञानी-विज्ञानी
  मानवता के प्रेमी
  संकीर्ण तुच्छ लक्ष्य
  की लालसा पाप है।
  मेरे सपने बड़े
  मैं मेहनत करूँगा
  मेरा देश महान् हो
  धनवान् हो, गुणवान् हो
  यह प्रेरणा का भाव अमूल्य है,
  कहीं भी धरती पर,
  उससे ऊपर या नीचे
  दीप जलाए रखूँगा
  जिससे मेरा देश महान् हो।'

NOTES

ई-श्रीधरन

- ईमानदार, सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्यबोध से युक्त सफल प्रशासक, दूरदर्शी, निर्णय लेना और निर्धारित समय-सीमा में उसको पूरा करना, कर्मठ ।
- पेशे से सिविल इंजीनियर और भारत में 'मेट्रो मैन' के नाम से विख्यात 'ई.श्रीधरन'।
- उनके नेतृत्व में कोंकण रेलवे और दिल्ली मेट्रो का निर्माण हुआ। उन्होंने जनयातायात के स्वरूप को सुलभ बनाया। भारत में सार्वजनिक परिवहन को नया रूप दिया।
- देश की पहली मेट्रो रेल कोलकाता मेट्रो की योजना डिजाइन एवं क्रियान्वयन की जिम्मेदारी उठायी और उसे पूरा किया। उन्होंने भारत में आधुनिक इंफ्रास्ट्रक्चर इंजीनियरिंग की आधारशिला रखी।
- लखनऊ, जयपुर, विशाखापट्टनम और विजयवाड़ा की मेट्रो परियोजनाओं भी इनके देखरेख में पूरी हुई।
- बेहतरीन योजनाकार, कार्यशैली तथा समय सीमा के भीतर कार्य को कुशलता एवं श्रेष्ठता के साथ सम्पादित करना।
- देश को आधुनिकता के रास्ते पर ले जाने वाले।
- सरकार ने उनके उत्कृष्ट कार्यों को देखते हुए पद्मश्री एवं पद्मविभूषण से सम्मानित किया।

KHAN GLOBAL STUDIES
Most Trusted Learning Platform
KHAN SIR